



वातायनम्

अक्टूबर-दिसंबर 2026

अंक - 07

वातायन यूरोप की त्रैमासिक पत्रिका



नासिरा शर्मा: दास्तानगाई

निबंध: प्रो. ए. अरविंदाक्षन: नैतिकता की भाषा

इस माह की पेंटर-लेखिका: डॉ. कुसुम पंत-जोशी

कविता: अवेद्य आलोक, योगाचार्य धनंजय कुमार

कहानी: तनुजा चौबे, सुधीर कुमार सोनी, डॉ. अरुणा अजितसरिया

लघु कथा: सरस दरबारी, सन्दीप तोमर, पुष्पेश कुमार पुष्प

नाटक: डॉ. अर्जुन गुप्ता 'गुंजन'

डायरी: देवी नागरानी, अनीता वर्मा

साक्षात्कार: प्रो. रेखा सेठी, बालेन्दु शर्मा दाधीच

लेख/आलेख/निबंध/व्यंग्य: डॉ. कुसुम पंत-जोशी, शामराव रावले, गोवर्द्धन दास बिन्नाणी, डॉ. मुदिता पचौरी, डॉ. ममता जैन, डॉ. मुकेश असीमित

पुस्तक समीक्षा: प्रकाश दयाल का उपन्यास 'कोशा'

स्थायी स्तम्भ: छन्द-सलिला, अटकन भटकन, व्याकरण पुराण, नटखट नगरी

अंतरराष्ट्रीय सहित्य: प्रगति टिपणीस

आंचलिक सहित्य: कुमायूनी: डॉ. सुरेश पंत

English: Purnima Varman, Yogacharya Dhananjaya Kumar

Book Review: Eric Chopra's Delhi's Haunted Monuments



वातायनम् - वसुधैव कुटुम्बकम् - वैश्विक साहित्यिक परिवार (A Global Literary Family)

संरक्षक

डॉ. पद्मेश गुप्त

प्रमुख संपादक

दिव्या माथुर

प्रबंध संपादक

अर्पणा संत सिंह

संपादक (भाषा और अभिव्यक्ति)

प्रो. राजेश कुमार

संपादन सहयोग

प्रो. मधु चतुर्वेदी (कविता)

डॉ. वंदना मुकेश

आराधना झा श्रीवास्तव (आंचलिक)

अजेय जुगरान (अंग्रेज़ी)

ऋचा जैन (विश्व साहित्य)

क्रिएटिव निदेशक

अंतरीपा ठाकुर मुखर्जी

वेब/तकनीकी विशेषज्ञ

शिवि श्रीवास्तव

कोषाध्यक्ष

एडवर्ड क्रास्क

सलाहकार

प्रो. रेखा सेठी

मीरा मिश्रा कौशिक, ओ.बी.ई.

डॉ. निखिल कौशिक

तितिक्षा दंड शाह

युद्ध, संघर्ष और महामारी के दौर में साहित्यिक और सांस्कृतिक सौहार्द के सेतु के रूप में - वैश्विक साहित्यिक परिदृश्य में नई प्रासंगिकता के साथ साहित्य की आत्मा सभी को एक सूत्र में बाँध देती है, जहाँ भाषा, भूगोल और सांस्कृतिक सीमाएँ गौण हो जाती हैं। साहित्य, कला और दर्शन में शांति, सहिष्णुता और विविधता के विचारों का अन्वेषण, जिनमें साझा मानवता का संवाद है, तथा करुणा, संघर्ष, प्रेम, विस्थापन, स्मृति, पहचान और बेहतर भविष्य की आकांक्षा है। इस संवाद में हर लेखक, हर कलाकार, हर पाठक इस वैश्विक परिवार का अभिन्न अंग है।

वातायनम् का लक्ष्य है, अतीत की प्रेरणादायक रचनात्मक धरोहर, वर्तमान की आधुनिकता और नवीन प्रयोगधर्मिता की अनुभूतियों की सम्मिलित अभिव्यक्ति - जो भविष्य के लिए धरोहर हो, सेतु बने। हमारा प्रयास रहेगा कि वातायनम् केवल पारंपरिक साहित्य तक सीमित न रहे, बल्कि वह नए लेखन और नई प्रौद्योगिकी के साथ कदम से कदम मिलाकर विश्व की अन्य भाषाओं और साहित्य के साथ वैश्विक मंच स्थापित कर सके।

Editorial Team संपादन मंडल

Patron संरक्षक  Dr Padmesh Gupta डॉ पद्मेश गुप्त	Chief Editor प्रमुख संपादक:  Divya Mathur दिव्या माथुर	Managing Editor प्रबंध संपादक  Arpana Sant Singh अर्पणा संत सिंह		
Editorial group संपादक मंडल  Prof Madhu Chaturvedi प्रो मधु चतुर्वेदी (कविता)	 Dr Vandana Mukesh डॉ वंदना मुकेश (Prose/ साप्ताहिक (गद्य))	 Ajay Jugraan अजेय जुगरान (English/ अंग्रेज़ी)	 Richa Jain ऋचा जैन (World Literature / विश्व साहित्य)	 Dr Rajesh Kumar डॉ राजेश कुमार (Language/भाषा)
Creative Marketing Manager क्रिएटिव मार्केटिंग मैनेजर  Antareepa Thakur Mukherjee अंतरीपा ठाकुर मुखर्जी	Web/ Technical Manager वेब/ तकनीकी मैनेजर  Shivi Srivastava शिवि श्रीवास्तव	Treasurer कोषाध्यक्ष  Aradhana Jha Shrivastava आराधना झा श्रीवास्तव (Regional /अंचलिक साहित्य)		
Advisors सलाहकार  Prof Rekha Sethi प्रो रेखा सेठी (Poetry/ गद्य)	 Mira Misra Kaushik OBE मीरा मिश्रा कौशिक ओबीई	 Dr Nikhil Kaushik डॉ निखिल कौशिक	 Titeeksha Dand Shah तितिक्षा दंड शाह	

वेबसाइट: www.vatayaneurope.com, यूट्यूब: www.youtube.com/@vatayanuk

ई-मेल: vatayaneurope@gmail.com

वातायनम् में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों से वातायनम् टीम का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
पत्रिका में प्रकाशित तस्वीरें गूगल, पिनटरेस्ट और अन्य अंतरजाल संसाधनों से साभार ली गई हैं।

अनुक्रम

संपादकीय	4
आपने लिखा है	5
नासिरा शर्मा: दास्तानगोई	6
इस माह के पेंटर-लेखिका: डॉ. कुसुम पंत-जोशी	9
कविता:	
अवेद्य आलोक: मजीदरेजा की अंतिम इच्छा	10
योगाचार्य धनंजय कुमार: कल तुम्हारा	12
कहानी:	
तनुजा चौबे: विरासत का अनुबंध	12
सुधीर कुमार सोनी: सूरजो बाई	16
डॉ. अरुणा अजितसरिया: मेरी प्यारी बिटिया	20
लघु कथा:	
सरस दरबारी: 'बेरोज़गारी' और 'पहचान'	24
सन्दीप तोमर: ऑनलाइन सहानुभूति	26
पुष्पेश कुमार पुष्प: भाग्य	26
नाटक:	
डॉ. अर्जुन गुप्ता 'गुंजन': काशी के घाट पर दो युगद्रष्टा	27
डायरी:	
देवी नागरानी: सिन्धी-हिन्दी गज़ल लेखन एवं अनुवाद	28
अनीता वर्मा: शेष-अशेष	33
साक्षात्कार:	
प्रो. रेखा सेठी से अर्पणा संत सिंह की बातचीत (भाग दो)	34
यंत्रबुद्धि के लेखक बालेन्दु शर्मा दाधीच से एक विशेष बातचीत	37
लेख / आलेख:	
प्रो. ए. अरविंदाक्षन: नैतिकता की भाषा	39
डॉ. कुसुम पंत-जोशी: देवयानी: एक देवदासी की कहानी	41
गोवर्द्धन दास बिन्नाणी 'राजा बाबू': चार पैसे	44
डॉ. मुदिता पचौरी: अथ धक्का कथा	45

ललित निबंध:

डॉ ममता जैन: व्यक्तित्व निर्माण: प्राचीन ज्ञान और आधुनिक चुनौतियाँ	47
व्यंग्य: डॉ मुकेश असीमित: चुनाव खत्म ही क्यों होते हैं यार!	49

पुस्तक समीक्षा:

सुरेन्द्र अग्निहोत्री: प्रकाश दयाल का उपन्यास 'कोशा'...	50
---	----

फ़िल्म समीक्षा:

मैं वापिस आऊंगा	52
-----------------------	----

स्थाई स्तम्भ

छन्द-सलिला: हरि-गीतिका: प्रो मधु चतुर्वेदी	53
अटकन भटकन (यात्रा-वृत्तांत) शिखा वाष्णीय	54
व्याकरण पुराण: डॉ अशोक बत्रा: हिंदी में 'र' की समस्या	56
नटखट नगरी: भगवती प्रसाद गौतम: तीन बाल कविताएं	57

अंतरराष्ट्रीय साहित्य:

प्रगति टिपणीस: फ़ायड म्यूज़ियम लंदन	58
---	----

आंचलिक सहित्य:

डॉ. सुरेश पंत: कुमाऊँनी भाषा: लिपि का प्रश्न.	62
श्रीमती कमला वेदी: कविता: 'हमर उत्तराखंड और 'यो माटी यो मुलुक'	64
डॉ. दिवा भट्ट: कहानी 'माया नहेंगे भाबर'	65

अंग्रेज़ी साहित्य:

Purnima Varman: Udaan: The Flight.	69
Yogacharya Dhananjaya Kumar: Music Beyond Entertainment.	75
Book Review: Eric Chopra's Ghosted: Delhi's Haunted Monuments: Mallika Ramachandran.	77
Dr. Ramnik Mathur: Cow's milk protein or dairy allergy	79

साहित्य संवाद शृंखला के अंतर्गत आयोजित कार्यक्रम ..	81
---	----

रेखा चित्र: विज्ञान व्रत

संपादकीय



अर्पणा संत सिंह

प्रबंध संपादक

आदरणीय पाठको,

आज जब वातायनम् अपने आठवें अंक के साथ आपके समक्ष है, तो मन अनेक भावनाओं से भरा है - संतोष, कृतज्ञता और उत्साह के साथ आगे कुछ और बेहतर, अधिक सार्थक और महत्वपूर्ण करने के प्रयास से। इसके लिए हमारी प्रमुख संपादक दिव्या माथुर सहित पूरे संपादकीय मंडल, सभी रचनाकारों, सहयोगियों, आप जैसे आत्मीय पाठकों और साहित्य प्रेमियों के प्रति हृदय से आभार, जिन्होंने वातायनम् को अपना भरपूर स्नेह दिया।

मनुष्य ने विज्ञान और तकनीक के माध्यम से अभूतपूर्व उपलब्धियाँ अर्जित की हैं, पृथ्वी को अपने ज्ञान और शक्ति से बदलने का सामर्थ्य पाया है; किंतु इसी उपलब्धि के साथ उसने अपने चारों ओर ऐसी राजनीतिक, सामाजिक और मानसिक सीमाएँ भी खड़ी कर ली हैं, जिनसे स्वार्थ, वर्चस्व, असहिष्णुता और हिंसा जन्म लेती है। यही हिंसा धीरे-धीरे संघर्ष, विद्रोह और युद्ध का रूप धारण कर लेती है।

आज साहित्य की प्रासंगिकता पहले से कहीं अधिक है। युद्ध के शोर के बीच साहित्य शांति की भाषा बोलता है; घृणा के बीच करुणा को बचाए रखता है; और निराशा के बीच बेहतर भविष्य का स्वप्न देखने का साहस देता है। वह मनुष्य के भीतर की हलचल है; समय की धड़कन है; समाज का आईना है और भविष्य के प्रश्नों की आहट भी है। वातायनम् साहित्य की इसी अजस्र और शाश्वत शक्ति को आत्मसात करने का विनम्र प्रयास है।

पीड़ा की कोई भाषा नहीं, प्रेम की कोई सीमा नहीं, करुणा की कोई संस्कृति नहीं और मानवता का कोई धर्म नहीं होता। प्रकृति भी हमें यही सिखाती है - असंख्य विविधताओं के बावजूद समूची पृथ्वी एक साझा घर है। विविधता उसका सौंदर्य है और सह-अस्तित्व उसका दर्शन। इसी व्यापक दृष्टि के विस्तार के साथ वातायनम् साहित्य, कला, दर्शन और संस्कृति के विविध रंगों के साथ यह अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है - नासिरा शर्मा की दास्तानगोई, प्रो. ए. अरविंदाक्षन का निबंध 'नैतिकता की भाषा', डॉ. कुसुम पंत-जोशी की 'एक देवदासी की कहानी', प्रो. रेखा सेठी से साक्षात्कार और यंत्रबुद्धि के लेखक बालेन्दु शर्मा दाधीच से विशेष संवाद। हमारे स्थायी स्तंभ अपनी विशिष्टता के साथ अंक को विविधता प्रदान करते हैं। वातायनम् की दृष्टि केवल हिंदी साहित्य के व्यापक संसार तक सीमित नहीं है। अंतरराष्ट्रीय, आंचलिक और अंग्रेज़ी साहित्य की रचनाएं पाठक को स्थानीय से वैश्विकता की यात्रा करवाते हैं - पूर्णिमा वर्मन की कहानी 'दि फ़्लाइट', प्रो धनंजय कुमार का 'Music Beyond Entertainment', पुस्तक समीक्षा 'Delhi's Haunted Monuments' जैसे समकालीन विषय भी पाठकों के लिए प्रस्तुत किए गए हैं।

हम चाहते हैं कि वातायनम् केवल एक साहित्यिक पत्रिका न रहे, बल्कि ऐसा खुला वातायन बने जहाँ से विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों की रचनात्मक और नवीन दृष्टिकोण की ताज़ी हवाएँ एक-दूसरे तक पहुँचें; जहाँ क्षेत्रीय साहित्य से विश्व साहित्य तक की यात्रा की रोशनी छन कर आये; जहाँ स्थापित रचनाकारों के साथ नई पीढ़ी की आवाज़ों को भी सुना और समझा जाए और जहाँ साहित्य, कला, दर्शन तथा नई प्रौद्योगिकी मिलकर भविष्य के संवाद की नई संभावनाएँ तलाशें।

अर्पणा संत सिंह

प्रबंध संपादक

आपने लिखा है

आदरणीय,
वातायन का अंक प्राप्त हुआ। आप ने हमारी माटी की बुंदेली भाषा में मेरी। साकेत सुमन चतुर्वेदी । कहानी डॉ. निहाल चंद्र शिव हरे की कविताएं और डॉ. सुधा दीक्षित का लेख प्रकाशित कर के हम लोगो और बुंदेलखण्ड का जो मान देश विदेश में बढ़ाया है । यह हर्ष और सुख की बात है। आप स्वस्थ रहें यूं ही सृजन अच्छे कामों में हिम्मत से सक्रिय रहें यही ईश्वर से हार्दिक शुभकामना है।
आभार

साकेत सुमन चतुर्वेदी
झांसी उ प्र

हार्दिक आभार मैम
आपका सहयोग मेरा सौभाग्य है
आशा है कि हिंदी साहित भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों की खुशबू फूलों की तरह महकती रहेगी।

नर्मदा कुमारी

वातायन यूरोप की त्रैमासिक पत्रिका के जुलाई- सितम्बर 2026 के अंक 06 में "आंचलिक साहित्य" परिशिष्ट के अन्तर्गत निहाल चन्द्र शिवहरे यानि मेरी बुन्देली कविताएँ "लॉकडाउन में मडइया में रयो", रामकथा", बुन्देली

भाषा में "हाइकु", एवं साकेत सुमन चतुर्वेदी की बुन्देली कहानी "निर्णय के अन्तिम क्षण" तथा डॉ. सुधा दीक्षित का आलेख "बुन्देली भाषा और साहित्य" प्रकाशित करने के लिए प्रमुख संपादक दिव्या माथुर जी एवं आंचलिक परिशिष्ट की संपादक आराधना झा श्रीवास्तव का हम सभी हृदय से आभार व्यक्त करते हैं।

संपादन मंडल द्वारा बुन्देली भाषा की रचनाओं को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित कर हम सभी बुन्देलखण्डवासियों का मान बढ़ाया है जिसके लिए हम सभी उनका भी आभार व्यक्त करते हैं।

भविष्य में भी हम आपसे इसी सहयोग की कामना भी करते हैं।

निहाल चन्द्र शिवहरे

वरिष्ठ उपाध्यक्ष बुन्देली, साहित्य उन्नयन समिति, झांसी, उत्तर प्रदेश, भारत।

दीदी बेहतरीन अंक, साधुवाद।

एक छोटा निवेदन है कि वातायनम के भविष्य में जब भी अंक निकलें तो उसे अवश्य ही भेजने की कृपा करेंगे। डॉ. अचला शर्मा को बीबीसी लंदन में सुना करते थे। आज इनकी अंग्रेजी कहानी पढ़ने का सौभाग्य वातायनम के माध्यम से मिला।

आपको आभार दीदी

हर्षवर्धन पांडे, पत्रकार



11/11

एशिया महाद्वीप में क्रिस्सागोई की दास्तानगोई

कुछ हकीकतें कुछ फ़साने!

नासिरा शर्मा

साहित्य अकादमी व व्यास सम्मान से पुरस्कृत लेखिका, संपादक, अनुवादक, फ़िल्म-निर्माता
naserasharma22@gmail.com



इतिहास अपनी बात घटनाओं और तारीखों के ज़रिए दर्ज करता है, लेकिन उसका सबसे दिलचस्प पहलू जो उससे छूट जाता है, और जो किताबों में दर्ज नहीं हो पाता, वह है, उस समय के जीवित लोगों के दिल में ठहरा सच और आँखों देखा हाल, जिसे वह उठते-बैठते याद करते और ये हकीकत भरी यादें सुनने वालों के दिल व दिमाग में बसकर पीढ़ियों का सफ़र तय करती हैं। इस तरह सीना-ब-सीना, ज़बान-से-ज़बान तक पहुँचते-पहुँचते पहली सी शक्ल में नहीं रह जाते हैं और अक्सर क्रिस्सागोई में तब्दील हो जाते हैं। घटना वही रहती है मगर सुनकर कहने वाला अपनी भावना और विचार भी उसमें डाल देता है। ये अफ़साने बड़े दिलचस्प बन जाते हैं और फिर यही क्रिस्से लिखित रूप में हमें जहाँ-तहाँ पढ़ने को मिलते हैं। उस पर शोध भी शुरू हो जाता है। नई तकनीक ने उसमें और भी जान डाल दी है ए.आई. की मदद से बने वीडियो आपको आकर्षित करते हैं।

इसी तरह का एक क्रिस्सा है जो ऐतिहासिक सच होने के बावजूद प्रकृति के रहस्य से कुछ इस तरह



जुड़ गया है कि जिसमें इंसानी पीड़ा सृजनात्मक हो उठती है जैसे कि वह शहज़ादी जो पिछले हज़ार साल से लगातार रोए चली जा रही जिसके टपकते आँसुओं को देखने, उसे चुल्लुओं में भरने के लिए उत्साहित और पर्यटक बोटलों में भरकर साथ ले जाने के लिए लालायित रहते हैं। इन टपकते आँसुओं के कारण गुफ़ा की दीवारों में ठंडी सी नमी बनी रहती है। इस क्रिस्से की दास्तान को जानने से पहले उस इतिहास को भी जान लेना ज़रूरी लगता है, जो इस

अफ़साने का ऐतिहासिक स्रोत है।

अरब ने जब ईरान पर आक्रामण किया तो उस समय सासानी शाह तृतीया यज़देहरद ईरान का शासक था। अरब हमले में जब शाह यज़देहरद की हालत मुक़ाबले की नहीं रह गई तब उन्होंने अपनी पाँचों लड़कियों और दोनों बेटों से कहा कि तुम अपनी जान बचाकर किसी तरह यज़्द पहुँचो, वहाँ के लोग तुम्हारी सहायता करेंगे। शाह ने जंग भी हारी और जान से भी हाथ धोया। ये पाँचों बहनें जिनके नाम पारसबानो, मेहरबानो, नाज़बानो, शहरबानो और नेकबानो थे, अपने भाइयों हरमज़दान और अर्दशीर के साथ अरब फ़ौज के सिपाहियों से बचते बचाते किसी तरह यज़्द प्रान्त पहुँचना चाह रही थीं, जो मध्य ईरान का रेगिस्तानी इलाक़ा है। पारसबानो यज़्दक़ान पहुँचने में कामयाब हुई और उन्होंने अपने हिमायतियों से बहनों को ढूँढ़ने का निवेदन किया तो पता चला कि वे रास्ते में ही मर गईं। शहरबानो भागते हुए बीच में पकड़ी गई और कैद कर मदीना लाई गई। जब गुलामों की नीलामी हुई तो शहरबानो को देखकर इमाम हुसैन ने कहा कि किसी शहज़ादी के साथ यह

सुलूक दुरुस्त नहीं है, बेहतर है कि यह अपनी पसंद का कोई आदमी चुनें और इनकी शादी उससे करा दी जाए। शहरबानो ने इमाम हुसैन को चुना और और इस तरह ज़ोराष्ट्रियन शहज़ादी इमाम हुसैन की पत्नी बनकर सुरक्षित व सुखमय जीवन जीने लगीं।



तीसरी बेटी नेकबानो का पीछा दुश्मनों के सिपाही कर रहे थे। नेकबानो के कुछ समझ में नहीं आया तो सामने दिख रहे पहाड़ की गुफा में छुपने चली गई और ज़मीन पर सर पटक-पटककर रोती हुई अहुरमज़दा को अपनी मदद करने के लिए पुकारने लगीं। सिपाही गुफा के मुँह तक पहुँच गए और कुछ पल बाद अंदर दाखिल हुए ताकि नेकबानो को पकड़ सकें। जब वे अंदर दाखिल हुए तो वहाँ उन्हें सरू का एक हराभरा पेड़ दिखा और नेकबानो का कहीं पता न था। पहाड़ ने अपने दिल में नेकबानो

को छुपा लिया था। गुफा में केवल एक आवाज़ सुनाई पड़ रही थी - चिक, चिक, चिक! यह पानी के टपकने की आवाज़ थी - टप, टप, टप! निराश सिपाही खाली हाथ लौट गए। ज़ोराष्ट्रियनों का विश्वास है कि ये नेकबानो के आँसू हैं जो निरंतर हज़ार साल से गुफा की छत से पानी की बूँदों के रूप में टपकते रहते हैं।

यह गुफा अब ज़ोराष्ट्रियन्स के लिए पवित्र स्थल बन गई और 24 जून को ईरान के विभिन्न शहरों व भारत में बसे पारसी इस पवित्र स्थल के दर्शन करने जाते हैं और चार-पाँच दिन रहकर वहाँ इबादत करते हैं और जश्न मनाते हैं। यह जगह चिक चिक के नाम से मशहूर है मगर एक दूसरे नाम से भी जानी जाती है, वह है पीर-ए-सब्ज़! वह सरू का हरा भरा दरख्त जो नेकबानो की शक्ल में उगा वह ज़रदुश्तियों के लिए महत्वपूर्ण बन गया। हैरत की बात यह है कि चिक चिक में सरू का उगा वह पुराना दरख्त सासानी समय के ज़ोराष्ट्रियन काल से आज वर्तमान ईरान तक अपना प्रभाव संवेदना और विश्वास के रूप में जमाए है कि कलाकार चाहे

वह पेन्टिंग हो, कालीन हो, इमारत की टाइल हो, या पहनने के कपड़े उन पर तरह-तरह से इस पेड़ को उकेरा जाता है।

यह भी क्रिस्सा मशहूर है कि एक सासानी शहज़ादी और उसका भाई भारत की तरफ़ भागकर आए थे और उस समय विक्रमादित्य नाम के राजा के साथ शहज़ादी की शादी हो गई थी। जब इस्लाम ईरान में फैला तो ज़ोराष्ट्रियन का एक जत्था भागकर अपनी पवित्र अग्नि को साथ लेकर गुजरात आया और जूडीराना से पनाह का निवेदन किया। राजा जूडीराना ने उनको शरण देना स्वीकार किया और साथ यह भी कहा कि उनके यहाँ रहने से हमारी जनता को किसी तरह का कष्ट न हो। उन्होंने राजा की शर्त सुनकर कहा कि वह दूध में शक्कर की तरह घुलकर रहने का वचन देते हैं। उन पारसियों ने गुजराती भाषा, लिबास और खानपान अपनाया और भारत के विकास और कला में सार्थक योगदान किया और कभी भी ऐसा कोई क़दम नहीं उठाया जिससे भारतीय समाज को कष्ट पहुँचता।

मैं तो यह मानकर चल रही थी कि



ईरान में अब न कोई

आतिशकदा बचा होगा न पारसी ज़ोराष्ट्रियन लेकिन चार वर्ष पहले जब मैं एक ज़ोराष्ट्रियन धर्मगुरु से दिल्ली में मिली तो ताज्जुब में पड़ गई कि वहाँ आज भी आतशकदे रौशन हैं। इस धर्म के अनुयायियों की संख्या काफ़ी है। यह लोग अपनी तरह रहते हैं। उनका लिबास और भाषा है। जो बहुत पुराने अग्निकुंड खंडहर में बदल गए हैं, उन्हें न गिराया गया और न ही उसे अपनी ऐतिहासिक धरोहर मानने से इंकार किया गया। और भी हैरत हुई कि उनके विचार आग के बारे में जानकर कि सारी दुनिया की न ज़मीन एक सी है और न हवा और न ही फल का मज़ा एक सा है। केवल एक चीज़ पूरे यूनिवर्स में एक तरह की है, वह है आग जो इंसान को रोशनी और ज्ञान देती है। इसलिए यह आग को महत्व देते हैं। सासानी दौर में सभी घरों की छत पर अतिशकदा होता जहाँ पर आग सुलगती रहती थी ताकि पहाड़ की ठंडक में तेज़ी न रहे।

डा. सैम विल्स ने 1473 में गुफा में छुपा एक आतिशकदा खोजा था जो लारिस्तान के कारयान पवित्र स्थल से लाकर यहाँ रखा गया था, जिसकी

आग पिछले 1554 साल से मुसलसल जल रही है; कभी नहीं बुझी। उस आग को रौशन किए रहने के लिए उसमें बादाम और खुबानी की लकड़ियाँ जलाई जाती हैं। पहलवी काल में 1934 में ज़ोराष्ट्रियन होमाबाई ने रकम देकर इसका रूप बदला। जमशीद अमानत के अंतर्गत यह परियोजना चली। यह जगह वराहरम के नाम से मशहूर है। यह स्थान साइप्रस व पाइन और फलों के वृक्षों से सजा है। इसकी वास्तुकला ज़ोराष्ट्रियन व ईरानी कला-संस्कृति का मिश्रण है। वर्ष 1999 में नेशनल हेरिटेज साइट ऑफ ईरान में इसे शामिल किया गया है।

यहाँ मैं किसी के कहे का उद्धरण करना चाह रही हूँ: "हम ईरानी बहुत दिनों से गमगीन हैं क्योंकि हमने अपने असली अस्तित्व को भुला दिया जो अवस्था का दर्शन रहा है: उदारता, स्वतंत्रता, प्रसन्नता!" ज़ोराष्ट्रियन आग की पूजा नहीं करते हैं मगर आग को महत्व देते हैं इनका विश्वास है:

हूमाताना: अन्देशे नेक - अच्छी सोच।

हू खताना: गुफ़तार नेक - अच्छा चाल चलन।

हूश वरताना: किरदार नेक - अच्छा चरित्र।

अहूरा मज़्दा: खुदाए यकता - खुदा एक है।

इसका फ़ारसी अनुवाद उसी तरह गाया जाता है जैसे अवस्ता में गाया जाता है जिसको सुनकर वही रूहानी कैफ़ियत होती है जो 'अरदास' सुन कर होती है। उसी तरह आपको वह वीडियो प्रभावित करता है जो शिराज़ के शिवालय में फ़ारसी भाषा में गाती वह लड़की - "हे शंकर, या महादेवा," उसमें भी वह रूहानी कैफ़ियत है जो खुदा से लौ लगाने वाले केवल महसूस नहीं करते बल्कि जो अच्छी आवाज़, लय-राग और शब्दों के प्रति संवेदनशील हैं वे इस भजन को बिना किसी धर्म के खाते में डाले अपने सौंदर्यबोध की तसकीन के लिए बार-बार सुनना पसंद करेंगे।

शाहनामा में सासानी काल की गाथा लिखते हुए फ़िरदौसी ने यज़्दीगर्द के ख़ानदान की तबाही का वर्णन बेहद मार्मिक ढंग से किया है। यज़्दीगर्द व परिवार की तस्वीरें गूगल में उपलब्ध नहीं हैं; यह सिक्के से उठाया गया चित्र है। नेकबानो और चिक चिक का तो चित्र कल्पना से ही सही बनाया तो जा सकता है।



डॉ. कुसुम पंत-जोशी

शोधकर्ता, सामाजिक इतिहासकार, शौकिया चित्रकार
kusumpantjoshi@gmail.com



डॉ. कुसुम पंत-जोशी, लेखिका, शोधकर्ता, सामाजिक इतिहासकार और शौकिया चित्रकार हैं, जो साउथ एशियन सिनेमा जर्नल और 'हिंदूइज़्म टुडे' के लिए नियमित रूप से लिखती रही हैं। उनकी महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं:

'The Kashmiri Pandit - Story of A Community in Exile', 'Kaleidoscope - South Asia Women in Britain'

और हाल ही में प्रकाशित

A Biographical Dictionary of Indo-British Cinema (1930-1951)

जिसे उन्होंने फ़िल्म इतिहासकार और लेखक ललित मोहन जोशी के साथ मिलकर संपादित किया है। UK हेरिटेज लॉटरी फंड से प्रायोजित उनकी पिछली पुस्तक 'निरंजन पाल: अ फॉरगॉटन लीजेंड एंड 'सच इज़ लाइफ' द ऑटोबायोग्राफी ऑफ़ निरंजन पाल'

(Niranjan Pal: A Forgotten legend and 'Such is Life' the autobiography of Niranjan Pal)

पर थी, जो लंदन में रहने वाले शुरुआती भारतीय फिल्म निर्माता थे।

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से मॉडर्न हिस्ट्री में डिस्टिंक्शन के साथ मास्टर्स डिग्री पूरी करने के बाद, कुसुम सिडनी यूनिवर्सिटी, ऑस्ट्रेलिया में पोस्टग्रेजुएट रिसर्च स्टूडेंटशिप (1978 से 1982) के लिए चुना गया। इस दौरान, उन्होंने हिस्ट्री डिपार्टमेंट के प्रोफेसर मार्जोरी जैकब्स और डॉ. जिम मैसेलोस की देखरेख में काम किया। उनकी PhD की थीसिस 19वीं सदी के आखिर और 20वीं सदी की शुरुआत में उत्तरी भारत के कश्मीरी पंडितों पर थी, जिसे एलाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली ने प्रकाशित किया।

कुसुम को प्रैक्टिकल और एकेडमिक रिसर्च का और सांस्कृतिक विषयों पर प्रेजेंटेशन देने का काफ़ी अनुभव है। लंबे समय से वे लंदन में स्थापित, भारतीय व दक्षिण पूर्वी एशियाई मुल्कों की अर्थपूर्ण फ़िल्मों पर प्रकाश डालने वाली फ़िल्म संस्था: South Asian Cinema Foundation (SACF) में प्रमुख शोधकर्ता के रूप में कार्यरत हैं।



मजीदरेजा की अंतिम इच्छा



अवेद्य आलोक

अनुभाग अधिकारी, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार
pandeyalokpandey007@gmail.com

मजीदरेजा की अंतिम इच्छा

अलविदा मेरे प्यारे पर्शियन
ताश खेलना, पतंग उड़ाना
गलबांही करना खुलेआम
झंकृत करना तार सितार के
क्यों नहीं, फुटबॉल भी खेलना
पर याद रखना भूल न जाना
कभी कोई पवित्र किताब न पढ़ना
मेरी कब्र पर।

हाँ पढ़ना आदमी की लिखी किताब
फिरदौस की रूबाई, फरोखजाद की
आशनाई
पढ़ना वह किताब जिसे कीचड़ में
फेंक देने पर
उसमें वर्णित गुलाब अपना रंग नहीं
खोता
न चिड़िया के छिन जाते हैं सुमधुर
स्वर
और न किताब का वैभव बहाल करने
के लिए
रक्त बहाना पड़ता है आदमी का
पढ़ना वह किताब जिसमें बुनकर
कालीन बनाते हो,
और कुम्हार मिट्टी के घड़े
सूक्तों और आयतों से क्या खूबसूरत
नहीं होते कालीन और सुराही
अगर फाड़ कर फेंक दे कोई वह

किताब

कहीं किसी को कोई फर्क नहीं पड़ता
गुलाब वहाँ से निकल अपनी डाल से
जा जुड़ जाता है
चिड़ियां फुर्र से उड़ अपने घोंसले में
चली जाती है
रहने के लिए प्रतीक्षित कि फिर कहीं
कोई और
अपनी अपनी लिपियों में रहने के
लिए बुला ले।

मेरा अपराध बस इतना कहना था
ईश्वर और कपड़े दोनों इंसानों ने
बनाए हैं
दोनों के अस्तित्व में आने से हज़ारों
सालों पहले तक
इंसान बिना ईश्वर और कपड़े के ही
रहा है
उसके बालों में तब रहा करती थी
बयार
और दिलों में निगार
और एक यह भी कहना कि हम प्रण
करते हैं
मरने से पहले उतार जायेंगे लबादे
ढकने के लिए उनका मस्तिष्क
जिन्होंने धरती पर लोगों के लिए
लबादे तक बनाए हैं
और परियाँ जन्नत में नंगी जन्माएँ है।

मेरे पिता मुझमें चल रहे हैं

मेरे पिता अब नहीं रहे
पढ़ता हूँ 'बाणभट्ट की आत्मकथा'
उनकी पसंदीदा किताब
लिखता हूँ उनकी कलम से
पहन घूम आता हूँ उनकी शर्ट
अब बिना ना नुकुर के खाने लगा हूँ
करेले की सब्जी
कि शायद जीवित हो उठे मेरे पिता
थके हारे आने पर कहते थे - मरने के
बाद आराम ही तो करना है
मिला है जीवन घिस लेने दो शरीर
दो पैसे भी बच जायेंगे और मिलेगा
स्पंदन रास्ते का
पर वही पिता माँ के पैदल बाजार
जाने पर झुंझला जाते थे
"दो पैसा बचा के कौन सा उद्धार कर
दोगी मेरा, बेवकूफ औरत,"
अब मैं भी चौक-बाज़ार घर से पैदल
ही आता जाता हूँ
और दीन-हीन, जर्जर काया सम्हाले
रिक्शेवाले को ऐसे ही कुछ पैसे
पकड़ा आता हूँ।

एक दिन अचानक चलते चलते
लगा जैसे चल रहा हूँ उनकी तरह सिर
झुकाए
पार कर रहा हूँ सड़क उनकी तरह

डर कर

मेट्रो में पैर पर पैर चढ़ा बैठा हूँ उनकी तरह

हो रहा हूँ उद्विग्न उनकी तरह देख किसी की लाचारगी

पर झट बोध हो आता है अपनी दीनता का

नहीं, नहीं यह पिता की दीनता है अब मेरे भीतर

ओह! उनकी आवाज़ से मेल खा रही है मेरी आवाज़

"मुझे सुख नहीं चाहिए" अपनी भर्राई आवाज़ मेरे गले में डाल

बंद कमरे में कर रहे हैं अपनी कविता का पाठ।

मेरे पिता अब नहीं रहे

पर उनकी गंध अब आवारा नहीं लग रही है

वह चल रही है मेरे साथ

जैसे वे सहेज रहे हैं मेरे भीतर अपना हर बिम्ब

कोई भी सामान निष्प्राण नहीं होता है - कहा करते थे

बिकते कपास के फूलों पर चित्रित है किसी के कुर्ते में लगे पैबंद

अन्न के बिकते दानों में खनखनाती गाती मिलेगी आधी रह गयी भूख

हनुमान बनोगे तभी श्रीराम को सहेजोगे

नहीं दिखेंगे तो मोती भी तोड़ फेंकोगे पिता न रहकर भी संततियों में भरते

रहते कई कई प्राण

मेरे पिता अब मुझमें चल रहे हैं

देखते हुए अपने जूतों के सुराख मेरे भीतर

मैंने सहेज रखे हैं पिता के जूते।

तारा

रेड-लाइन मेट्रो से पिंग लाइन मेट्रो पहुँचने के क्रम में

कॉरिडोर से गुज़रते हुए

दिखा आसमान में कुछ प्रदीप्त

शायद चमक होगी वायुयान की

पर यह तो ठहरा था इत्मीनान से

शहर में ठहरना दोष है

इन दोषियों को कंक्रीट पारितोष नहीं देता है

फिर क्या हो सकता है यह?

सांझ का तारा

पर इतना चमकीला

लाख लाख चाँद सम्हाले इस मेट्रोपॉलिटन नगर में।

कॉरिडोर से भीड़ बढ़े जा रही थी

मोबाइलों में आँखें गड़ाए

और आकाश कुसुम देखता हुआ मैं

वेलकम प्लेटफॉर्म संख्या तीन पर पहुँच

इत्मीनान से निहारने लगा वह स्थिर पिंड

हाँ, हाँ! वह था सांझ का तारा

इसे तो मैं जैसे भूल ही गया था

महानगरों में सदा साथ रहने वाली सहज सरल बातें

हो आती है कितनी अजनबी

एकाएक चलते हुए याद आता है

दूर्वा घास हरे रंग की होती है

आसमान में रूप बदलते रहते हैं बादल

बच्चे माँ पिता से गुदगुदाए जाने के लिए रहते हैं प्रतीक्षित

और...

और आसमान से टूटते रहते हैं तारे।

इत्मीनान से देखने के फेर में

शिव विहार जाने वाली एक

और मेट्रो छूट गयी

लगा शुक्र जैसे कह रहा हो

छत पर सोकर तारे गिनने का दौर जा चुका है

ओह! आदमी कहाँ आ चुका है?

पिंग लाइन मेट्रो मुझे लिए चली जा रही थी

कुछ दूर साथ चलता रहा वह आवारा आरा की अनगिन सिंदूरी सांझ याद आयी

छत पर गमले में दसबजिया फूल संग लगी तुलसी कब की सूख चुकी होगी

उस छत पर दाने न पाकर गिलहरी लौट जाती होगी

और देखता होगा वीरान पड़ा अपना छत

हो धारा से विरत

आसमान में नया नया उगा एक गुमनाम तारा।

बोझ

वस्तुओं का बढ़ता बोझ कष्टकर होता है

उससे कष्टकर होता है एक ही वस्तु का बढ़ता बोझ

जैसे लादेन के माथे विज्ञान

विज्ञान, विज्ञान, विज्ञान और एक ही विज्ञान।

बच्चा होकर देखो तो कितना कुछ व्यर्थ लगेगा

शर्ट के ऊपर टाई क्यों?

पतलून ढीली नहीं तो बेल्ट क्यों

धूप चश्मे से कैसी दिखी

मोबाइलों ने दूर नहीं कर दिया



कविता

कल तुम्हारा



योगाचार्य धनंजय कुमार

सामाजिक उद्यमी, सांस्कृतिक
कार्यकर्ता, फ़िल्म निर्माता
dkyoga@hotmail.com

कहानी

विरासत का अनुबंध



तनुजा चौबे

बुटीक संचालक
tanuja.choubey08@gmail.com

दिख जाना गिलहरियों का
खिलंदड़
ट्रेडमिलों ने छीन नहीं लिए मिट्टी के
छंद
घड़ी लील गई प्राची अरुणिम रेख
और जो कुछ बचा वह ले गई किताब
बजबजाती आँखें तुम्हारी और उनके
चेहरे को नकाब?

सामान कम जितना
विश्वरूप विराट उतना
लो दृष्टि गर्भस्थ शिशु से
डोले डिंब में समझ पारावार
जन्माया ही गया था सदा शिशु बने
रहने के लिए।
हाय रे! करवा लिया खतना माले
गनीमत के लिए।
आखिर आवश्यकता ही कितनी है
मर्त्य मनुज को
पुआल, कपास और बालियों के बाद
मिले एक बांसुरी
बने एक नाव
और हो दूर कहीं एक गाँव।



कल तुम्हारा

आज मेरा, कल तुम्हारा
कर्म मेरा, फल तुम्हारा
आदिमानव के अधर पर
प्रश्न मेरा, हल तुम्हारा।

हारनेवाले के मन में
नाम है केवल तुम्हारा
जीतनेवाला स्वयं से
ऊबता थकता बेचारा।

इस धरा के तन से फूटा
अन्न मैं, आंचल तुम्हारा
भिक्षु के माथे पर अंकित
नाम मैं, संदल तुम्हारा।

पहले दिन से विरह में
बहती प्रकृति की अश्रुधारा
पहले ही दिन से समंदर का
ये सारा जल है खारा।

पिता को मुखान्नि देते ही केशव
प्रसाद फूट-फूटकर रो पड़ा; उनका
रुदन इतना गहरा और असहाय था
कि श्मशान में खड़े लोग एक-दूसरे
का मुँह देखने लगे। जिन्होंने जीवन
भर पिता-पुत्र के संबंधों में दूरी ही
देखी थी, वे आज धीमे स्वर में कह
रहे थे, "लगता है, बेटा भीतर से बहुत
जुड़ा हुआ था।"

पर केशव जानता था कि यह रोना
केवल मृत्यु का नहीं था। यह वर्षों से
भीतर दबे अपराधबोध, अधूरे संवादों
और गलतफहमियों का फूट पड़ना
था। उसे लग रहा था जैसे चिता की
आग केवल पिता के शरीर को नहीं,
उसके भीतर जमा उन सारी चुप्पियों
को भी भस्म कर रही हो, जिन्हें वह
जीवन भर ढोता रहा था। कुछ रिश्ते
रोकर भी हल्के नहीं होते।

घर लौटकर उसने किसी से नज़र
मिलाने की कोशिश नहीं की। बैठक
में उसकी दोनों विवाहित बहनें अपने
पतियों के साथ बैठी थीं, जबकि
तीसरी बहन भी वहीं चुपचाप

उपस्थित थी। सभी दिवंगत पिता की स्मृतियों को अपने-अपने ढंग से परख रहे थे। पत्नी इंद्राणी का चेहरा देखते ही उसने निगाहें फेर लीं और अपने कमरे में चला गया।

आईने में उसे अपना चेहरा अपरिचित लगा। लाल सूजी आँखें, थकान से बुझा चेहरा और भीतर पसरा अथाह खालीपन। वह बिस्तर पर लेटा, पर नींद आँखों से कोसों दूर थी। छाती में भारीपन था, मानो माँ की सारी बेचैनियाँ अब उसके भीतर आकर बैठ गई हों। मन हुआ कि पिता के कमरे में जाकर लेट जाए, पर वर्षों का संकोच उसे रोकता रहा। तुलसी के पास जलता दिया और कोने में टिकी पिता की पुरानी छड़ी उसे जैसे पुकार रही थी। वही छड़ी, जिससे कभी अनुशासन सिखाया गया था और जिसके पीछे छिपे प्रेम को समझने में उसे आधी उम्र लग गई।

उस रात स्मृतियों के बंद दरवाज़े खुलने लगे। बचपन में जब वह देर से घर लौटता, पिता दरवाज़े पर खड़े मिलते। वे सरकारी स्कूल के शिक्षक थे - शांत, अंतर्मुखी और नियमों के अत्यंत पक्के। वे चाहते थे कि बेटा अनुशासित बने, पढ़ाई और भविष्य पर ध्यान दे। उसी कठोर विश्वास में कभी-कभी उनकी छड़ी उसके पैरों पर पड़ जाती।

दर्द से वह सिहर उठता और माँ बीच में आकर कहतीं, "मत मारो। जहाँ दिखाना है गुस्सा, वहाँ जाकर दिखाओ।"

आज केशव समझ पा रहा था कि उस

समय पिता के भीतर कितना द्वंद्व चलता होगा। शायद वे डरते थे कि यदि वे ढीले पड़ गए, तो जीवन बेटे को उनसे कहीं अधिक कठोर दंड देगा। अनुशासन उनके लिए प्रेम का ही एक असहज और कठोर रूप था। तीन बेटियों के बाद केशव का जन्म हुआ था। पिता समाज सेवा के कार्यों में भी सक्रिय रहते थे। इसी दौरान उनके संपर्क में एक विधवा स्त्री आई, जिन्हें घर में बाद में सब 'छोटी माँ' कहने लगे। उनकी एक छोटी बेटी थी। समाज की उपेक्षा और आर्थिक संघर्षों के बीच वे अकेली पड़ गई थीं।

पिता ने छोटी माँ और उनकी बेटी की आर्थिक तथा मानवीय जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। गाँव छोटा था। लोगों ने अपने-अपने अर्थ निकाल लिए। किसी ने उन्हें त्यागी कहा, किसी ने दोषी। कुछ ने छोटी माँ को पिता की दूसरी औरत घोषित कर दिया। पिता जानते थे कि सफाई सच को हल्का नहीं करती, केवल शोर बढ़ाती है इसलिए उन्होंने मौन को ही अपना पक्ष बना लिया। माँ ने इसे सहजता से स्वीकार नहीं किया। उनकी पीड़ा और असुरक्षा घर के वातावरण में उतरने लगी। तीनों बेटियाँ भी उसी वातावरण में बड़ी हुई। माँ की पीड़ा और घर की अस्थिरता ने उनके भीतर स्थायी असुरक्षा भर दी थी। वे हर रिश्ते में अपने हिस्से की सुरक्षा तलाशने लगी थीं।

समय बीतता गया। बड़ी बहन का विवाह हुआ और वह पास ही बस गई। कुछ वर्षों बाद दूसरी बहन का

भी विवाह हो गया। तीसरी बहन ने विवाह न करके स्वतंत्र जीवन चुना। घर की जिम्मेदारियाँ बढ़ रही थीं और रिश्तों की दरारें भी धीरे-धीरे चौड़ी हो रही थीं। दो बेटियों के विवाह ने एक सामान्य सरकारी शिक्षक की सीमित आय पर गहरा दबाव डाल दिया। वर्षों की बचत, उधार और सामाजिक जिम्मेदारियों के बीच पिता आर्थिक रूप से टूटने लगे थे। ऊपर से छोटी माँ और उनकी बेटी की जिम्मेदारी भी वे निभा रहे थे। वे अपनी कठिनाइयों का प्रदर्शन नहीं करते थे, पर घर की तंगी अब छिपी नहीं रह गई थी।

इन्हीं दिनों अपनी मेहनत और लगन से केशव का इंजीनियरिंग कॉलेज में दाखिला हो गया। माँ उसके चयन पर भीतर-ही-भीतर बहुत प्रसन्न थीं। उन्हें लगता था कि बेटे की यह उपलब्धि उनके जीवन के संघर्षों पर शांत विजय है। किन्तु इंजीनियरिंग की पढ़ाई का खर्च उठाना पिता के लिए आसान नहीं था। एक वर्ष ऐसा भी आया जब वे समय पर उसकी पूरी फीस की व्यवस्था नहीं कर सके। तब माँ के आग्रह पर मुँह बोले मामा आगे आए और उन्होंने केशव की एक वर्ष की फीस भर दी। माँ ने इसे अपने पक्ष के सहारे के रूप में देखा। केशव के मन में भी मामा के प्रति सम्मान बढ़ा। लेकिन पिता के लिए यह घटना उनकी असमर्थता का मौन प्रमाण बन गई। उन्होंने कुछ नहीं कहा, पर उनके आत्मसम्मान पर लगी वह चोट बहुत भीतर तक उतर गई।

मामा का घर में आना-जाना बढ़ता

गया। माँ उन्हें अपने पक्ष की ढाल की तरह देखने लगीं। पिता को उनका हस्तक्षेप पसंद नहीं था। जब भी वे कुछ कहना चाहते, माँ मामा को सामने कर देतीं। घर का वातावरण धीरे-धीरे कटु होता चला गया। एक दिन बात इतनी बढ़ गई कि पिता का हाथ माँ पर उठने को हुआ। उसी क्षण केशव ने उनका हाथ पकड़ लिया। वह किसी पक्ष में नहीं था; वह केवल अपने घर को टूटने से बचाना चाहता था। लेकिन उसी क्षण पिता और पुत्र के बीच एक अदृश्य दीवार खड़ी हो गई, जो फिर कभी पूरी तरह नहीं गिरी।

इसके बाद पिता छोटी माँ और उनकी बेटी के यहाँ भोजन करने लगे। इधर घर में मामा का प्रभाव और बढ़ गया। दोनों ओर अधिकार, पीड़ा और अहंकार की रस्साकशी चलती रही। एक ही घर में रहते हुए भी लोग अपने-अपने पक्षों में बँटते चले गए। समय बीतता गया और केशव की इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी होने लगी। डिग्री वितरण समारोह का दिन आया। माँ ने मुँह बोले मामा को साथ चलने के लिए तैयार कर लिया।

उन्होंने सहज बहाने बना दिए, "तुम्हारे पिता व्यस्त हैं... उन्हें भीड़ पसंद नहीं... मामा ही साथ चल जाएँगे।" केशव भी उस समय परिस्थितियों को समझने की उम्र में नहीं था। वह मामा को लेकर समारोह में चला गया। जब यह बात पिता तक पहुँची, तो वे भीतर तक टूट गए। उन्हें लगा कि जीवन की मजबूरियों और समय की दूरियों ने धीरे-धीरे उन्हें

अपने ही बेटे के जीवन के किनारे ला खड़ा किया है। पहली बार उन्हें स्पष्ट रूप से महसूस हुआ कि उनके पुत्र के जीवन में उनके लिए सुरक्षित स्थान पर अब किसी और की उपस्थिति दर्ज हो चुकी है। सिर्फ़ एक वर्ष की फीस न भर पाने की असमर्थता ने मानो उनसे उनका पितृत्व भी छीन लिया था। उन्होंने कुछ नहीं कहा, लेकिन उस दिन उनके भीतर एक गहरी चुप्पी स्थायी रूप से घर कर गई।

इंजीनियरिंग पूरी करके लौटने के बाद माँ और बहनों की इच्छा पर केशव ने व्यवसाय शुरू किया। बहनों ने आर्थिक सहयोग दिया, पर मुनाफ़े में हिस्सेदारी भी तय रही। माँ की प्रसन्नता के लिए उसने यह समझौता स्वीकार कर लिया। उसकी मेहनत रंग लाई और व्यवसाय धीरे-धीरे सफल होने लगा। घर की आर्थिक स्थिति सुधरने लगी। लेकिन जीवन शायद संतुलन को अधिक देर तक टिकने नहीं देता। इसी बीच माँ का देहांत हो गया। माँ के जाने के साथ ही घर का एक बड़ा आधार टूट गया। उनके साथ शिकायतों का एक स्वर भी चला गया, जिसने वर्षों तक घर के वातावरण को प्रभावित किया था।

अब पहली बार पिता और पुत्र एक-दूसरे के सामने बिना किसी मध्यस्थ के खड़े थे; पिता भावनात्मक रूप से केशव की ओर झुकने लगे। छोटी माँ की बेटी का विवाह हो चुका था और पिता उस जिम्मेदारी से लगभग मुक्त हो गए थे। घर की अशांति धीरे-धीरे कम होने लगी, पर वर्षों की खामोशी अब भी जस की तस बनी रही। साथ

रहते हुए भी पिता और पुत्र के बीच कुछ अनकहे शब्द हमेशा अटके रह जाते थे।

केशव कई बार पिता से खुलकर बात करना चाहता, पर हर बार संकोच और अहंकार के बीच शब्द कहीं खो जाते। उसे लगता था कि इतने वर्षों की दूरी को कुछ वाक्यों से कैसे पाटा जा सकता है। उधर पिता भी शायद बहुत कुछ कहना चाहते थे, पर उम्र, थकान और भीतर जमी ग्लानि उन्हें मौन बनाए रखती थी। मृत्यु से एक दिन पहले पिता ने केशव को अपने पास बुलाया। उनकी आवाज़ धीमी थी, पर भीतर वर्षों का संचित बोझ उतरने को व्याकुल था।

"मैंने कभी कोई गलत काम नहीं किया..." उन्होंने रुक-रुककर कहा, "बस एक मजबूर औरत और उसकी बेटी की जिम्मेदारी निभाई।"

कुछ क्षण बाद उन्होंने फिर कहा, "मरते वक्त झूठ नहीं बोल रहा हूँ।"

केशव मौन बैठा रहा। उसके भीतर जैसे वर्षों की शिकायतें, प्रश्न और स्मृतियाँ एक-दूसरे से उलझ गईं। वह कुछ कह नहीं पाया। उठकर जाने लगा तो पिता ने उसका हाथ हल्के से दबाया और बोले, "कभी-कभी उनका हालचाल पूछ लेना।"

बस इतना ही। न कोई सफाई, न क्षमा-याचना, न किसी निर्णय का औचित्य सिद्ध करने का प्रयास। केवल एक अधूरी जिम्मेदारी का शांत हस्तांतरण।

अगले दिन पिता नहीं रहे। पिता को

मुखाग्नि देते समय केशव के भीतर वर्षों से जमा हुआ दर्द फूट पड़ा था। उत्तरकर्म की तैयारियाँ चल रही थीं। पंडित जी आवश्यक वस्तुओं की सूची बना रहे थे। तभी केशव ने शांत लेकिन दृढ़ स्वर में कहा, "छोटी माँ को भी बुलाया जाएगा।"

बैठक में जैसे अचानक सन्नाटा छा गया। बहनों के चेहरे कठोर हो उठे, "क्या ज़रूरत है?" बड़ी बहन ने तीखे स्वर में कहा।

"जिन्होंने हमारे घर का सुख छीन लिया, उन्हें अब यहाँ बुलाया जाएगा?" दूसरी बहन की आँखों में वर्षों का आक्रोश था। तीसरी बहन चुप रही, पर उसके मौन में भी असहमति स्पष्ट थी। इंद्राणी ने धीरे से कहा, "लोग क्या कहेंगे? उत्तरकर्म में उन्हें बुलाने की क्या आवश्यकता है?"

केशव ने पहली बार बिना झिझक सबकी ओर देखा, "यह निर्णय मैं पिता के लिए ले रहा हूँ," उसने शांत स्वर में कहा, "और शायद अपने लिए भी।" उसके स्वर में न क्रोध था, न चुनौती - केवल एक स्थिर दृढ़ता थी। उसे लगा कि पिता ने उसे कोई ज़मीन-जायदाद नहीं सौंपी। उन्होंने उसे एक मौन अनुबंध दिया है - अधूरे सच को स्वीकार करने का, किसी के हिस्से की मानवीय गरिमा को बचाए रखने का और कटु स्मृतियों को अगली पीढ़ी तक विरासत की तरह न पहुँचाने का।

उत्तरकर्म के दिन छोटी माँ आई। सिर ढँका हुआ था। आँखों में संकोच,

कृतज्ञता और वर्षों का उपेक्षित दुःख तैर रहा था। वे धीरे से आँगन के एक कोने में बैठ गई। किसी ने उन्हें अपनाया नहीं, पर किसी ने रोका भी नहीं। उन्होंने चुपचाप पिता के चित्र के सामने दीपक रखा, हाथ जोड़कर आँखें बंद कर लीं। उनके चेहरे पर विलाप नहीं था; केवल गहरा, थका हुआ सम्मान था उस व्यक्ति के लिए, जिसने समाज के निर्णयों की परवाह किए बिना किसी कठिन समय में उनका हाथ थामा था। उस क्षण केशव ने पहली बार उन्हें बिना पूर्वाग्रह के देखा। उसे महसूस हुआ कि जीवन केवल सही और गलत के स्पष्ट खानों में नहीं बँटा होता। मनुष्य अपने समय, परिस्थितियों, कमजोरियों, करुणा और विवशताओं से मिलकर बनता है। कोई पूरी तरह निर्दोष नहीं होता और न ही पूरी तरह दोषी।

पिता की चिता अब ठंडी हो चुकी थी। और केशव के भीतर वर्षों से जमा भय, क्रोध, अपराधबोध और द्वंद्व भी धीरे-धीरे राख में बदलने लगे थे। आज वह समझ गया था कि विरासत केवल संपत्ति का हस्तांतरण नहीं होती। कुछ विरासतें जिम्मेदारियों के रूप में मिलती हैं, कुछ मौन के रूप में और कुछ ऐसे निर्णयों के रूप में, जिन्हें व्यक्ति को अकेले खड़े होकर निभाना पड़ता है। घर प्रायः सबकी सहमति से बनते हैं, पर कभी-कभी उन्हें बचाने के लिए एक व्यक्ति का साहसी और करुण निर्णय भी आवश्यक होता है। विशेषतः तब, जब किसी अधूरे दायित्व को सम्मानपूर्वक पूरा करना हो, किसी अनकहे सत्य

को स्वीकार करना हो या संबंधों की अग्नि में बची हुई मनुष्यता को राख होने से रोकना हो।

उस दिन पहली बार केशव ने अपने पिता को केवल पिता के रूप में नहीं, बल्कि एक सम्पूर्ण मनुष्य की तरह देखा— सीमाओं, विवशताओं, गलतियों, करुणा और मौन संघर्षों से भरा हुआ मनुष्य। उसकी आँखों से फिर आँसू बह निकले; पर इस बार उन आँसुओं में शिकायत कम थी और समझ अधिक। शायद यही पुत्र होने की अंतिम दीक्षा थी; शायद यही वह विरासत थी, जिसे निभाने का अनुबंध उसके पिता उसे सौंप गए थे।





सुधीर कुमार सोनी

लेखक और कवि
ankitalittlecraft@gmail.com

सूरजो बाई एक सुडौल गठीले बदन की सुंदर सी महिला थी। उसकी झोपड़ी के सामने वाली सड़क में सेठों के जो इमारतें और बंगले हैं, वहाँ की कोई भी बहू या लड़की सुंदरता में उसके मुकाबले में नहीं ठहरती थी। सूरजो आसपास घरों में झाड़ू बर्तन का काम करती थी; उन घरों में दो-तीन अधिकारी, एक कारखाने वाला और दो-तीन घर तो राजनीति में अच्छे खासी दखल रखने वाले थे। सूरजो के शरीर सौष्ठव की चर्चा सेठों के घर की औरतों में भी होती थी। उन्हें डर था कहीं उनके पति सूरजो के दीवाने न हो जाएं। लेकिन सूरजो अपने घर-परिवार और काम के प्रति वफ़ादार थी।

सूरजो का पति ठेला चलाता और देशी शराब का शौकीन था। रात में उसकी झोपड़ी में रोज महफ़िल जमती, जिसमें गाँव के लोग और साथी ठेला चलाने वाले होते थे। मोहल्ले में दबी जुबान में यह चर्चा भी होती थी कि सूरजो स्प्रिट पिलाने का काम करती थी। उस समय, स्वास्थ्य विभाग द्वारा जनहित में जारी नोटिस को सभी शराब की दुकानों के आगे लगाना अनिवार्य होता था - दो हड्डियों

के बीच एक खोपड़ी का प्रतीक चिह्न – जिसके नीचे लिखा रहता ‘सावधान स्प्रिट पीने से मौत हो सकती है।’

सूरजो सात घरों में काम करती थी। उसका उठना बैठना मगर सिर्फ़ दो ही घरों में था, जिनसे वह सलाह लेती थी। एक घर नगर निगम के एक अधिकारी का था और दूसरा एक कारखाने वाले का था, जिसके यहाँ कटीले तारों का उत्पादन होता था। सूरजो की नौ साल की एक ही बेटी थी, जो सूरजो की ही तरह बहुत सुंदर थी। तारा चौथी कक्षा में पढ़ती थी। कभी-कभी वह सूरजो के साथ काम पर चली जाती और उन घरों के बच्चों के साथ वह भी खेलती।

एक दिन कारखाने वाले सेठ की मालकिन ने कहा, “सूरजो, शीला की शादी तय हो गई है। अब वह विदेश जाएगी।”

“कहाँ मेम साहब.”

“बहुत दूर, अमेरिका के शहर में.” मालकिन ने कहा।

“आप गई हैं मेम साहब?”

“कहाँ रे। साहब भी नहीं गए हैं वहाँ.” मालकिन ने सोफ़े पर बैठते

हुए कहा।

“आप खुश नहीं हैं.” सूरजो ने पूछा।

“खुशी तो है, पर बेटी को दो तीन साल या हो सकता है कि पाँच साल भी न देख पाएं.”

“फिर मेम साहब।”

“साहब ने तय कर दिया है, वही करना पड़ेगा।” मालकिन ने कहा। फिर थोड़ा सा रुककर बोली, “सूरजो तेरी बेटी को अगर उसके साथ भेज दे तो? तू अपने पति से पूछ लेना। वह वहाँ अमेरिका में रहकर पढ़ेगी। वहाँ के नियम हिसाब से नौकरों को पढ़ाना ज़रूरी है।”

“मैं पूछ कर बताऊँगी मेम साहब।” सूरजो ने रात को अपने पति से पूछा। “एक ही बेटी है, उसे अपने से कैसे दूर रखें।” पति ने कहा।

“अच्छा निगम वाले साहब से पूछ लेते हैं।”

“हमारी बेटी है, उनसे क्या पूछना.” पति ने कहा।

“तुम तो अनपढ़ हो, मैं भी अनपढ़ हूँ। बेटी को मैं नौकरानी का काम नहीं करने दूँगी, मैं तो साहब से जाकर

बात करूँगी।”

दूसरे दिन सूरजो श्रीवास्तव जी के घर काम पर गई, श्रीवास्तव जी की पत्नी स्कूल में शिक्षिका थी।

“मैडम जी, एक बात करनी है।”

श्रीवास्तव जी और उनकी पत्नी दोनों ने उसकी बात सुनी। श्रीवास्तव जी ने कहा “सूरजो मैं माणिकलाल जी से जाकर बात कर लूँगा ले किन एक बात है वे तो अपनी बेटी को देखने साल में दो बार जा सकते हैं, पर तुझे तो अपनी बेटी कम से कम चार साल बाद ही देखने मिलेगी।”

“सोच लो। अपने मरद से भी पूछ ले। आखिर वो उसका बाप है।” श्रीवास्तव साहब ने कहा। सूरजो को थोड़ा संतोष हुआ कि चलो बड़े साहब ही ढंग से बात कर लेंगे तो अच्छा रहेगा।

श्रीवास्तव जी एक दिन समय निकाल कर ने माणिकलाल जी के कार्यालय गए। वे तो मोहल्ले के ही थे, उन्हें अच्छा लगा कि श्रीवास्तव की राय सूरजो ने ली है। माणिकलाल जी ने कहा, “घर के सदस्य की तरह उसे रखा जाएगा। वहाँ सरकार की नियम व शर्तें हैं, वह मानने पर ही वहाँ रहा जा सकता है।”

“लेकिन सूरजो अपनी बेटी से कब और कितने समय बाद मिल सकती है.” श्रीवास्तव जी ने पूछा।

माणिकलाल जी ने कहा, “हम भी दो तीन साल बाद ही जा सकते हैं। बिटिया की फ़ोटो ज़रूर मंगा लिया करेंगे.”

दूसरे दिन सूरजो जब काम करने आई तो श्रीवास्तव जी ने उसे बताया, “देख सूरजो, माणिकलाल जी ने मुझे बिलकुल साफ़ कहा है कि वे खुद दो-तीन साल में एक बार जा पायेंगे, हाँ दो एक बार फ़ोटो अवश्य मंगा सकते हैं। अब तुम अपने पति से पूछ लो। यह बहुत बड़ी बात है कि तुम्हारी बेटी अमेरिका में पढ़-लिख लेगी। अच्छे खासे लोग भी अपने बच्चों को वहाँ पढ़ाने नहीं भेज सकते।”

सूरजो को विश्वास हो गया कि श्रीवास्तव साहब अच्छी तरह समझ कर आए हैं; अब अपने पति से पूछकर वह फैसला ले लेगी। उसने किसी तरह पति को मना लिया और माणिकलाल के घर जाकर उसने अपनी बेटी को भेजने की सहमति दे दी। माणिकलाल जी ने कहा कि सरकारी कागज़ी कार्रवाई करनी पड़ेगी और पासपोर्ट बनाना पड़ेगा; वह सब सूरजो के समझ से परे था। उसे तो बस यह पता था कि उसकी बेटी अमेरिका में जाकर पढ़ेगी।

सूरजो की सहमति के छह सात माह बाद विवाह की तारीख निकली। जयपुर से रायपुर छत्तीसगढ़ बारात आई। विवाह सम्पन्न होने के बाद सूरजो ने भारी मन से माणिकलाल की बेटी के साथ अपनी बेटी को भी विदा किया। कोई बीस दिन बाद वे जयपुर से रवाना हो गये।

जयपुर से अमेरिका जाने के ठीक एक दिन पहले माणिकलाल की पत्नी ने सूरजो से ट्रंककाल पर बात कराई; बेटी ने अपने कुशल मंगल

होने की सूचना दी। सूरजो ने अपने जीवन में पहली बार फ़ोन से बात की थी। उस समय, सरकारी कार्यालयों के अलावा, बड़े संस्थानों और उद्योगपति के यहाँ ही फ़ोन हुआ करते थे।

छह महीने बाद माणिकलाल की बेटी के विवाह का एल्बम आया, उसके ससुराल वालों ने जयपुर से भेजा था। सूरजो ने वह मालकिन के साथ देखा। अगले छह महीने बाद अमेरिका से भी फ़ोटो आया, उसके दामाद ने भिजवाया था, जिसमें तारा भी थी। कोई ग्यारह महीने बाद ट्रंककाल आया, माणिकलाल ने अपने दामाद और बेटी से बात की। भारत और अमेरिका में समय का भी बहुत फ़र्क है। माणिकलाल जी ने सूरजो को बता दिया था कि जब यहाँ दिन होता है, वहाँ रात रहती है।

धीरे-धीरे समय बीतता गया। जब कभी सूरजो माणिकलाल जी के यहाँ काम कर रही थी और ट्रंककाल आ जाता तो बेटी से सूरजो की भी बात करवा दी जाती। माणिकलाल की बेटी को अमेरिका गए तीन साल हो गए थे। तारा भी अब वहाँ रम गई थी। एक दिन माणिकलाल जी ने बताया कि तारा ने मिडिल स्कूल पास कर लिया और अब वह हाई स्कूल में पढ़ने जाएगी। इस बीच, माणिकलाल की बेटी के दो बच्चे भी हो गए थे, जिनकी देखभाल तारा करती थी। तारा को माणिकलाल जी की बेटी ने अपने परिवार के सदस्य की तरह ही रखा था।

पाँच साल के बाद, दामाद और बेटी को देखने माणिकलाल जी और उनकी पत्नी अमेरिका गए और वहाँ एक माह रहे, सूरजो की बेटी अब बड़ी हो गई थी। सूरजो का मन बैचन हो उठा, उसे अब अपनी बिटिया को सामने से देखने का मन था। इसी बात पर पति से उसका झगड़ा हो जाता। एक दो बार श्रीवास्तव साहब भी गए माणिकलाल जी से मिलने।

माणिकलाल जी ने बताया, “बेटी दामाद भी कहाँ आए हैं, बेटी के ससुराल वाले भी दो बार उनसे मिलने गए हैं अमेरिका। दामाद भी शादी के बाद जयपुर अकेले ही आया और एक ही सप्ताह में ही लौट गया। हमारी अपनी बेटी भी हमारे पास कहाँ आई है श्रीवास्तव जी।”

दस वर्ष बीत गए थे। माणिकलाल जी ने सूरजो को बताया कि उनकी बेटी ग्रेजुएट हो गई थी। बेटी और दामाद भी रायपुर आने वाले हैं। सूरजो को खुशी हुई कि आखिर बेटी उसके पास आकर रहेगी। किसी तरह दो महीने निकल गए और वह दिन भी आ गया जब जयपुर से माणिकलाल की बेटी के साथ उसकी बेटी तभी आई। वह बहुत ही सुंदर दिखने लगी थी। माणिकलाल जी और उनकी पत्नी को भी उसे देखकर बहुत आश्चर्य लग रहा था। तारा अब अमेरिका के वातावरण में पूरी तरह रम गई थी। जिस दिन तारा आई, सूरजो भी वहीं थी।

“हैलो मम्मी।” बोलकर तारा

माणिकलाल जी की बेटी के साथ ऊपर चली गई। सूरजो को बहुत ही बुरा लगा। माणिकलाल जी की पत्नी ने समझाया, “सूरजो, अभी तो वह आई है। अब यहीं रहेगी; सब पहले की तरह हो जाएगा।”

“अपनी बेटी अब अपनी नहीं रह गई है, लगता है मालकिन।”

“अरे हमारी बेटी आई है कि नहीं हमारे पास।” मालकिन ने कहा।

“आपकी बेटी की बात अलग है मालकिन, वह तो पहले भी महल जैसे घर में थी, अब भी है। लेकिन मिट्टी के घर वाले को एक बार महल मिल जाए तो वह मिट्टी के घर वापस कहाँ जाएगा? यह बात मेरे समझ में पहले नहीं आई, लेकिन जिस तरह से इतने साल बाद वह अपनी माँ से मिली है अब मेरी नहीं रही वह।”

सूरजो इतना कहकर रोने लगी। माणिकलाल जी की पत्नी ने उसे ढाढ़स बँधाया और स्वयं सोच में पड़ गई कि उनसे गलती तो हो ही गई है। एक दो बाद दिन माणिकलाल जी उनकी पत्नी और बेटी तीनों ने मिलकर तारा को समझाया कि उसका असली घर वही है। अब उसे वहीं रहना चाहिए। तारा थोड़ा सा सामान लेकर अपने घर गई। मोहल्ले में भी जानकारी हो गई थी कि सूरजो की लड़की अमेरिका में पढ़ कर आयी है। आसपास के लोग बड़ी उत्सुकता से सूरजो की बेटी को देख रहे थे। उसके हाथ में अंग्रेज़ी का एक उपन्यास था। मोहल्ले में तारा कौतुक का विषय हो गई थी। उसके पिता के

साथ ठेला चलाने वाले साथी के बच्चे सोच रहे थे कि तारा उन्हें पहचान जाएगी लेकिन उसने किसी को भी नहीं पहचाना। वह पूरी तरह अमेरिकी वातावरण में रम चुकी थी।

माणिकलाल जी की बेटी थोड़ी देर उनके घर पर ही बैठी रही। सूरजो को लगा कि उनके बीच तारा अपने आप को अपमानित महसूस कर रही है। वह उपन्यास पढ़ती रही; माँ बाप से बात भी नहीं की। आधे घंटे बाद ही वह माणिकलाल के घर वापस लौट गई। माणिकलाल के पूछने पर उसने वहाँ रहने से इन्कार कर दिया। माणिकलाल को लगा तारा अब उनके गले की हड्डी बन गई है। सबके बहुत समझाने के बावजूद, तारा अपने घर जाने को तैयार नहीं थी। वह अमेरिका में ठाट-बाट से रहने की आदी हो गई थी; उसका अपने माता-पिता से मोह खत्म हो चुका था। माणिकलाल जी की बेटी पंद्रह बीस दिन रहने के बाद वापस जयपुर चली गई। कुछ दिनों बाद उसे वापस अमेरिका लौटना भी था।

सूरजो ने माणिकलाल के घर भी आना-जाना बंद कर दिया था; उधर माणिकलाल बड़ी मुसीबत में फँस गए थे; आखिर वे तारा का क्या करें। माणिकलाल जी के कारखाने के उत्पादन का माल बहुत से शहरों में सप्लाई होता था। बहुत से व्यापारी उनके यहाँ आते-जाते थे। संयोग से एक दिन भिलाई का एक व्यापारी सुरेश उनके यहाँ व्यापार के सिलसिले में उनसे मिलने आया। वह माणिकलाल जी से बहुत समय से

वह व्यापार कर रहा था। उनके साथ एक नौजवान भी था।

“सुरेश जी, बहुत समय बाद आपको हमारी याद आई।” माणिकलाल ने उन्हें बैठने के लिए आग्रह किया। फिर घंटी बजा कर नौकर से पानी लाने को कहा।

माणिकलाल जी ने सुरेश से कहा, “आपने इनका परिचय नहीं करवाया।”

“यह भी घर का बच्चा है। इसकी नौकरी भिलाई स्टील प्लांट में लग गई है। इंजीनियरिंग की पढ़ाई इसने नागपुर से की है।”

“घर का बच्चा मतलब?” माणिकलाल जी ने पूछा।

“मतलब यह कि इसकी माँ हमारे परिवार के सदस्य की तरह थी। पिछले महीने ही वह चल बसी। तीस सालों तक उसने मेरे माता-पिता और सभी की बहुत सेवा की। उसका कोई नहीं था। अब मनोज हमारी ज़िम्मेदारी है।”

माणिकलाल जी को लगा कि शायद उसकी समस्या का समाधान होने वाला है; यदि तारा का सम्बंध इस लड़के से हो जाए तो। वह उनको अपने घर के भीतर ले गए और उन्हें तारा के विषय में जानकारी देते हुए उन्होंने तारा को आवाज़ लगाई। तारा तुरंत चली आई। तारा को सुरेश जी ने देखा, उन्हें तारा अच्छी लगी।

“तारा, ये हैं सुरेश जी, हमारे बहुत पुराने परिचित हैं। आँटी से कहना वो नाश्ता लेकर आए तुम भी साथ

आना।”

तारा घर के भीतर से नौकर के साथ नाश्ता लेकर आई। साथ में माणिकलाल जी की पत्नी भी थीं। माणिकलाल जी ने कहा, “दफ्तर में जो बैठे हैं, उन्हें नाश्ता दे आओ। तारा बेटा, अपने हाथ से देना।”

दफ्तर में बैठे मनोज के सामने तारा ने प्लेट रख दी।

“अंकल जी कहाँ है?” मनोज ने पूछा।

“जी, आ रहे हैं, अंदर हैं।” तारा ने कहा और अंदर चली गई। सुरेश जी और वह युवक दोनों तारा को देख चुके थे। माणिकलाल जी ने उस युवक को भी अंदर बुलवा लिया। माणिकलाल जी और उनकी पत्नी अंदर चले गए। अब उस कमरे में सुरेश और वह युवक थे।

“मनोज, तुम्हें ये लड़की कैसी लगी?”

“कौन लड़की?” मनोज को आश्चर्य हुआ, “कैसी लगी मतलब मैं समझा नहीं।”

“तुम्हें अपना घर बसाना है कि नहीं?”

“आप अचानक कैसे कह रहे हैं, मैं क्या बताऊँ। आप मेरे सब कुछ हैं। यह निर्णय आपका है।”

सुरेश जी मनोज के विचार से बहुत ही खुश हुए; उन्होंने माणिकलाल जी को आवाज़ लगाई। माणिकलाल जी कमरे में आए तो उन्होंने कहा, “हमारा बेटा मनोज कह रहा कि मैं

जो भी निर्णय लूँगा इसे स्वीकार है। अब मैं इसकी चाची अपनी पत्नी को लेकर आऊँगा और सीधे उसी दिन सब कुछ तय हो जाएगा। वैसे हम दोनों की तरफ़ से हाँ है।”

माणिकलाल जी ने सूरजो को खबर दी लेकिन सूरजो को उतनी खुशी नहीं हुई। सूरजो ने सोचा शादी के बाद भी उसकी बेटी उन्हीं के यहाँ आएगी-जाएगी, उनकी झोपड़ी में तो नहीं आने वाली तारा। सूरजो माणिकलाल के यहाँ नहीं गई; उसका हृदय पत्थर का हो चुका था।

हफ़्ते भर बाद सुरेश जी मनोज के पूरे परिवार को लेकर आए माणिकलाल के घर ये तो सूरजो को खबर भिजवाई गई पर वह नहीं आई। माणिकलाल जी ने श्रीवास्तव जी से मिलकर उन्हें जानकारी तारा और मनोज के विषय में बताया, वे बहुत खुश हुए, “हम सूरजो से कहेंगे कि वो तारा को आशीर्वाद देने आ जाए।”

माणिकलाल जी के यहाँ तारा के विवाह की तैयारी शुरू हो गई। उन्होंने अपने कुछ खास लोग और मोहल्ले के कुछ गिने चुने को ही विवाह में बुलाने का विचार किया। उन्होंने सूरजो और उसके पति से भी पूछा कि अपने रिश्तेदारों में से किन लोगों को विवाह में बुलवाना है तो वह बता दें लेकिन सूरजो और उसके पति ने कोई भी इच्छा नहीं जताई। माणिकलाल जी को लग रहा था किसी तरह विवाह संपन्न हो जाए। मोहल्ले में उनकी प्रतिष्ठा बनी रहे।

देवउठनी के पहले ही मुहूर्त में उन्होंने तारा का विवाह धूमधाम से कर दिया। माणिकलाल जी की मोहल्ले में भी बहुत वाहवाही हुई। उन्होंने सुरेश जी के परिवार से सूरजो के परिवार को मिलवाया। सूरजो ने मिलने में कोई भी उत्साह नहीं दिखाया क्योंकि उसकी बेटी तारा उनको अपना मान ही नहीं रही थी। सूरजो का परिवार विवाह में उसी तरह उपस्थित रहे जैसे और नौकर-चाकर उपस्थित थे। विदा होते तक सूरजो और उसका पति उपस्थित थे। उस रात माणिकलाल और सूरजो के परिवार दोनों ही की ही आँखों में नींद नहीं थी। सूरजो और माणिकलाल जी ने तारा को तो विदा कर दिया था लेकिन तारा के साथ ही उन दोनों की आँखों की नींद भी विदा हो गयी थी।



डॉ. अरुणा अजितसरिया

एम.बी.ई., मुख्य परीक्षक (हिन्दी) कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय
arunaajitsaria@yahoo.co.uk

आज तुम्हारा जन्म दिन है। कल्पना कर रही हूँ कि तुम होती तो कैसी लगती, क्या तुम्हारे बालों का सुनहरा रंग आज भी बरकरार रहता, तुम्हारे गुलाब की पंखुड़ियों जैसे कोमल गालों को क्या उम्र की धूप ने पका कर तांबई रंग का बना दिया होता? पर मेरे मन में यह कल्पना टिक नहीं पाती और तुम्हारी वही कोमल छवि उभर आती है जिसे मैंने पहली और अंतिम बार मिडवाइफ़ की बाँहों में देखा था – गुलाब की कोमल पंखुड़ियों सा गुलाबी चेहरा, कमल की बंद कलियों सी मुँदी हुई आँखें और नन्हे-नन्हे पैर जिन्हें चूमने की कल्पना मात्र से मैं रोमांचित हो उठती थी! मेरे हाथ स्वतः तुम्हें अपनी छाती से लगाने के लिए आगे बढ़ गए थे, पर इससे पहले कि मैं तुम्हें छू पाती, मिडवाइफ़ शीघ्रता से तुम्हें कमरे से बाहर ले गई; अवसन्न सी मैं दरवाज़े को ताकती रह गई थी।

फ़रवरी की उस उदास सुबह, भोर से ही बर्फ़ के जो हलके-हलके फूल गिरने शुरू हो गए थे, वे अब बढ़ कर बर्फ़ का तूफ़ान बन गए थे। बर्फ़ की बारिश खिड़की से दिखाई देते पेड़ की शाखाओं पर गिरकर झालर की तरह

लटक रही थी; मेरी संवेदना भी जैसे बर्फ़ की तरह जम गई थी। पूरे नौ महीने तुम्हें अपने गर्भ में धारण करने की लंबी प्रतीक्षा के बाद जब तुम्हें अपनी छाती से लगाकर पहली बार माँ बनने की संपूर्णता से रोमांचित होने का समय आया, मिडवाइफ़ तुम्हें चुपचाप एक सादे कपड़े में लपेट कर मुझसे दूर ले जा चुकी थी। मैं डिलीवरी रूम में बेबस सी लेटी स्थिति की वास्तविकता को समझने की असफल कोशिश कर रही थी; नवजात शिशु के प्रथम रुदन की जगह मौत के भयावह सन्नाटे ने मेरी चेतना को स्तब्ध कर दिया था। मेरी सूनी आँखें कमरे की छत पर टिकी थीं; नौ महीनों में प्रतिपल तुम्हें अपने गर्भ में अनुभव करने के सुख के बाद, मुझे भीतर की यह रिक्तता खाए जा रही थी। क्या मैं कोई भयानक दुस्वप्न देख रही हूँ, आँख खुलने पर सब कुछ पहले जैसा हो जाएगा।

तुम्हें जो मैंने उन नौ महीनों में प्रति पल जिया था, वही मेरी पूँजी है जिसे मैं मन ही मन न जाने कितनी बार जी लेती हूँ। आज तुमसे ढेर सारी बातें करने का मन हो रहा है, तुम्हें अपने हर पल के अनुभव बताने का जब तुम

मेरे में गर्भ में थी। क्या सच में मातृत्व की संपूर्णता की दहलीज़ तक पहुँच कर हठात मेरे पैर फिसल गए थे और मुझे खाली हाथ लौटना पड़ा था? वह तो कोई और थी, कोई और जो सपने टूटने पर रो भी न सकी; मिडवाइफ़ तुम्हें ले जा चुकी थी किंतु तुम्हारी आत्मा का एक अंश मेरे भीतर ही रह गया था और हमेशा से मेरे अंदर ही है; कोई भी तुम्हें मुझसे दूर नहीं कर सकता, मौत भी नहीं।

शादी के कुछ ही महीनों बाद ही वह पति के साथ ब्रैडफ़र्ड आई थी; सब कुछ नया था; यार्कशायर ऐक्सेंट में बोली जाने वाली अंग्रेज़ी भाषा समझने में कठिनाई होती थी। उसे एक ऑफ़िस में नौकरी मिल गई और अगले ही महीने एक नन्हे मेहमान के आने की दस्तक! उस रात उसने पहली बार अपने भीतर तितली के कोमल नये पंख के कंपन से नींद खुलने पर रोमांचित होकर बगल में सोए पति को जगाया, ‘सुनो देखो यह कैसा नया अनुभव है।’

पति ने उठ कर पेट पर हाथ फेरा, ‘कुछ तो नहीं।’

‘ऐसे नहीं, इतना कड़ा हाथ रखोगे तो तितली अपने पंख कैसे फैलाएगी?’ फिर पेट पर कान लगाकर सुनने का प्रयत्न, ‘कुछ भी नहीं’, पर वह आत्मलीन थी, पहला रोमांचित कर देने वाला कंपन, जैसे तितली ने पहली बार अपने कोमल, नये पंख खोले हों!

क्लिनिक में मिडवाइफ़ ने पूछा, ‘डज़ द बेबी किक?’

उसकी अनुभूति की तुलना में ‘किक’ कितना कठोर शब्द है।

‘वैल, आई फैल्ट ऐज़ इफ़ ऐ बटरफ़्लाइ वॉज़ जेंटली ओपनिंग इट्स विंग्स।’

मिडवाइफ़ मुस्कराती है, ‘सून यू विल फील दैट द लिटिल बटरफ़्लाइ हैज़ टर्न्ड इंटू ए रैबिट किकिंग अराऊंड, इट वॉंट इवन लेट यू स्लीप।’

कितना सुखद होगा वह सब अपने भीतर अनुभव कर पाना! उसे लगता है कि वह शिशुमय हो गई है, वह हर पल एक सुखद भविष्य की कल्पना में डूबी हुई फ़ुलटाइम प्रेग्नेंट है। ऑफ़िस में साथ में काम करने वाली जूली की काम से संबंधित बातें उस तक नहीं पहुँच पातीं। उसके हाथ में बेबी पैटर्न की किताब देख कर जूली मुस्कराती है, ‘हाऊ एक्साइटिंग, मैटिनी कोट नीले रंग का बनाओगी या और गुलाबी रंग का?’

वह हल्के लेमन रंग का ऊन लाएगी जो न्यूट्रल रंग है, फिर चाहे लड़का हो या लड़की! नन्हे-नन्हे मिंट्स को अपनी उंगलियों में फँसाए पति कहते हैं, ‘अरे इसमें तो मेरी एक अंगुली तक नहीं अटती, हमारे बेबी का हाथ कैसे घुसेगा?’

‘यह उसे बिलकुल पूरा आएगा।’

सप्ताह जैसे दो टुकड़ों में बंट गया है, मंगलवार और बृहस्पतिवार – मंगलवार को जब क्लिनिक में मिडवाइफ़ चेक-अप करती है - ‘ब्लड प्रेशर: 110/70, जॉली गुड!, वेट: 116 पाउंड, फ़ाइन, फीटल हार्ट:

140, यू आर डूइंग वेरी वेला।’

रात को सोने से पहले दोनों

पति-पत्नी घंटों बेबी कैटलॉग देखते हैं। मदर-केयर का प्रेम अधिक सुंदर है या हाइंज़ बेबी फूड का, बेबी कॉट ब्राउन-मफ़ से लेंगे या जॉन लुइस से।

पड़ोसन कहती है, ‘यू लुक रेडिएंट, आइ हैड हर्ड दैट यू आर सुपोस्ट टू ब्लूम व्हेन प्रेग्नेंट, आई कैन सी दैट इन यू।’

वह आत्मविभोर हो संपूर्णता की अनुभूति में डूब जाती है।

जैसे-जैसे दिन नज़दीक आने लगे, व्यस्तता बढ़ती गई; कितने काम सलटाने हैं - मैटिनी कोट की मैचिंग का बोनट बुनकर उसमें रिबन लगाना, हाइंज़ से बेबी मिल्क का ऑर्डर भेजना, बेबी-कॉट के लिए चादर खरीद कर उसे धो कर रखना। रात के समय बिस्तर में लेटे हुए पति-पत्नी इस गरिमामय अनुभूति से गदगद होते हैं कि अपने आने वाले शिशु के स्वागत की तैयारी स्वयं कर रहे हैं। जब-कभी घर की याद आती है तो पति यह कह कर सम्हाल लेते हैं कि वहाँ रहती तो ये सारे सुख मिलते क्या? और मुझे तो पता ही नहीं चलता कि पापा बनने वाला हूँ, एक दिन सुबह सोकर उठने पर भाभी या छोटी बहन आकर कह देती, भैया मिठाई खिलाओ, पापा बन गए हो। यहाँ मुझे लगता है कि मैं भी अपने बच्चे के जन्म में बराबर से हिस्सा ले रहा हूँ।’

शिशु की कल्पना दूर-दूर की उड़ाने

भरने लगती है।

‘अच्छा बताओ, उसकी आँखें किसके जैसी होंगी?’

‘बिलकुल तुम्हारी तरह।’

‘उँह नहीं, मेरी तरह नहीं, मुझे तुम्हारी आँखें ज़्यादा पसंद हैं।’

‘चलो हटो, मैं बना रही हूँ, अपनी पसंद से बनाऊँगी, आँखें बिलकुल तुम्हारी तरह ही होंगी।’ और फिर ‘नाक’ पर आकार बात अटक जाती है, दोनों कोई भी संधि करने को तैयार नहीं। अंत में एक मध्यम मार्ग निकल ही आता है, ‘चलो यदि लड़का हुआ तो मेरे जैसी और लड़की हुई तो तुम्हारे जैसी नाक होगी।’

हर सप्ताह के चेक-अप्स और मिडवाइफ़ के नोट्स ‘फ़ील्स वैल’ से आश्वासित होकर घर लौटना; तितली का हल्का कंपन खरगोश की छलांग में बदल जाना - चंदबरदाई के ‘पृथ्वीराज रासो’ में पढ़ा था कि जब पृथ्वीराज की सेना प्रयाण करती थी तो घोड़ों की टाप सुनकर गर्भवती शत्रु-पत्नियों के गर्भ में शिशु उछलने लगते थे। उसने इसे चंदबरदाई की अतिशयोक्ति समझा था, पर उसके गर्भ का शिशु तो बिना सेना के घोड़ों की टाप सुने ही उछलने लगता है। पेट पर हाथ फेर कर दोनों पति-पत्नी अनुमान करते हैं, ‘यह सिर है, यह पीठ है और ये हाथ।’

‘नहीं यह हाथ नहीं हो सकता, मिडवाइफ़ कह रही थी कि हाथ भीतर की तरफ़ हाथ जोड़ने की मुद्रा में जुड़े रहते हैं, ये पैर हो सकते हैं,’

कितना अभूतपूर्व होगा वह क्षण जब दोनों जन सच में नन्हे पैरों को चूम सकेंगे।

क्लिनिक के रूटीन के साथ मदरक्राफ़्ट और रेलैक्सेशन-क्लासेस जुड़ गई। घर आकर नयी सीखी बातें कि आसन्न-प्रसवा को क्या-क्या व्यायाम करने चाहिए, पति पर उड़ेल देती है, ‘आज ब्रेस्ट-फीडिंग की क्लास में मिडवाइफ़ ने बताया कि प्रथम तीन मास बच्चे के लिए माँ के दूध से बढ़कर कुछ नहीं होता है और ब्रेस्ट-फीडिंग की तैयारी करने के लिए एक व्यायाम बताया है।’

‘अच्छा, क्या व्यायाम है कर के दिखाओ।’

‘नहीं, मुझे शर्म लगती है, अगली बार प्रसव का वृत्तचित्र दिखाएंगे, उसमें तुम भी शामिल हो सकते हो। मिडवाइफ़ ने सबसे पूछा कि किसका पति डिलीवरी के समय साथ में रहना चाहता है; मेरे साथ वाली निराशा से बोली कि उसका पति साथ में नहीं रहना चाहता, वह तो पब में बैठकर बीयर पिएगा। तुम तो मेरे साथ रहोगे न।’

वृत्त चित्र देखने जाने का अवसर नहीं आया; युनिवर्सिटी के इंडिया-वीक सेलीब्रेशन से लौटने पर हल्का दर्द शुरू हो गया, आधे-आधे घंटे से होने वाला दर्द इतना हल्का था कि कुछ ध्यान ही नहीं दिया, पर क्रमशः दर्द के बीच का अंतराल कम होता चला गया। रात डेढ़ बजे एक अधूरा सा दर्द पेट से शुरू होकर पीठ की ओर जाकर खोने लगा तो पति को

जगाया, कहीं यह कॉन्ट्रैक्शन तो नहीं? मिडवाइफ़ की बताई बातें याद आई कि जब दर्द दस-दस मिनट में होने लगे तो ऐम्बूलेंस के लिए फोन करना। पति ऐम्बूलेंस के लिए इंतज़ार करने की जगह अपनी कार से पहले से तैयार क्लिनिक की लिस्ट के सामान का सूटकेस लेकर ब्रैडफ़र्ड रॉयल इनफ़र्मरी पहुँचे, हल्की-हल्की बर्फ़ गिर रही थी।

मैटर्निटी-यूनिट में पहुँचने पर मिडवाइफ़ ने यूरिन, ब्लड-प्रेसर और टेम्पेचर जाँच करते हुए पूछा, ‘कॉन्ट्रैक्शन्स कितनी देर में हो रहे हैं?’

‘हर दस मिनट में।’

‘बहुत ज़ोर से या हलके?’

‘हलके।’

मिडवाइफ़ अपनी कलाई की घड़ी पर आँखें टिकाए अगले कॉन्ट्रैक्शन का इंतज़ार करती है। कॉन्ट्रैक्शन्स जब पंद्रह मिनट पर होने लगे, तब उसने इंटर्नल-एगज़ामिनेशन किया, ‘अभी केवल एक अंगुली जितना डाइलेशन हुआ है, अभी देरी है, रात यूँ ही बीत जाएगी।’

पति से वह घर लौटकर आराम से सोने के लिए कहती है ताकि सुबह ताज़ा होकर आए।

नींद की गोली का असर था या क्या की वह पूरी रात आराम से सोई; सुबह सात बजे जब नर्स ने ब्रेकफ़ास्ट के लिए जगाया तो उसने डाइनिंग हॉल में जाकर नाश्ता किया। पति को बताने के लिए कि अस्पताल आने की जल्दी न करें, वह टेलीफ़ोन-ट्रॉली में

पैसे डाल ही रही थी कि नर्स ने बताया, 'देयर इज़ ए लवली विज़िटर फ़ॉर यू, लव।' और हाथ में चॉकलेट का डिब्बा, डैफ़ोडिल्स का गुलदस्ता और कंधे पर कैमरा लटकाए हुए पति ने पास आकर उसे अपनी बाँहों में भर लिया। मन ही मन खुश होती हुई वह शिकायत करती है, 'इतना खर्च क्यों किया?'

'अरे पगली, यह हमारा तीसरा या चौथा नहीं, पहला बच्चा हो रहा है!' और फिर एक साँस में ही बताने लगे, 'आज सुबह तीन पार्सल आए हैं – प्रेम, बाथ-टाइम सेट और नैपीज़।'

शाम तक जब एक बार भी कॉन्ट्रैक्शंस नहीं हुए तो मिडवाइफ़ ने कहा, 'समटाइम्स यू गेट फ़ाल्स एलार्म। वेन द बेबीज़ हेड इज़ गेटिंग इंगेज्ड, इट फ़ील्स एज़ इफ़ यू आर इन लेबर बट इट इज़ंट एन इस्टैब्लिशड लेबर।'

और शाम को पति-पत्नी वापस घर लौट चले।

ब्रैडफ़र्ड में बस्ने के बाद वे पहली बार बर्फ़ का गिरना देख रहे थे। उससे पहले, वह हिंदी सिनेमा में स्नोफ़ाल के रोमांटिक दृश्य देख कर कल्पना करती थी कि असल में यह देखना कितना सुंदर होता होगा। रुई के पहले छोटे और क्रमशः बड़े फूलों का निरंतर झरना शुरू हुआ और घर पहुँचने तक सड़कों पर बर्फ़ जमनी शुरू हो गई। उसे सड़क पर जमी बर्फ़ पर पैर रखने में भी डर लग रहा था। ऐसी मनहूसियत जैसे किसी ने धरती को कफ़न उढ़ा दिया हो। रात को

बिस्तर में लेटे हुए उसे लगा कि अचानक उसका पेट बेहद कड़ा हो गया है, वह इंतज़ार करती रही कि शायद लंबी साँस लेने से शिथिल हो जाए, पर नहीं, पेट का तनाव कम नहीं हुआ। पति ने पूछा, 'दर्द हो रहा है?'

'नहीं, सिर्फ़ एक तरह की बेचैनी है।'

'सोने की कोशिश करो, सुबह एक बार जी.पी. को दिखा लेंगे, मिडवाइफ़ कह रही थी अभी देरी है।'

नितांत अनुभवहीन पति-पत्नी केवल उतना ही जानते हैं जितना मिडवाइफ़ ने बताया था पर मिडवाइफ़ ने किसी असाधारण स्थिति की तो चर्चा तक नहीं की थी। वह बार-बार अपने पेट पर हाथ फेरती रही कि शायद तनाव कम हो और वह शिशु की हरकत अनुभव कर सके। रात जैसे बीतना ही नहीं चाह रही थी और नींद कोसों दूर थी। सवेरा होते ही अस्पताल फ़ोन किया, मिडवाइफ़ अपने राउंड पर निकल चुकी थी। तब तक पेट का तनाव तो कुछ शिथिल हो गया था, उसकी जगह हल्के दर्द ने ले ली थी। उसे हैरानी हो रही थी कि इस बीच उसके गर्भ में उछलने वाला शिशु अचानक निष्क्रिय क्यों हो गया है। मिडवाइफ़ ने बताया था, 'वेन यू आर इन लेबर, द बेबी डज़ नॉट किक,' यह सोच कर मन को आश्रस्त किया। दोपहर को चेक-अप करने मिडवाइफ़ आई, दस मिनट तक कोशिश करने पर भी उसे शिशु की धड़कन सुनाई नहीं दी। मिडवाइफ़ का चेहरा देख कर घबरा कर पूछा, 'इज़ एवरी थिंग

ऑलराइट?'

जवाब देने के बदले मिडवाइफ़ ने एम्बुलेंस के लिए फ़ोन किया। पति-पत्नी एम्बुलेंस में और मिडवाइफ़ उसके पीछे अपने गाड़ी में अस्पताल के लिए रवाना हो गए। रास्ते भर एक अशुभ अनहोनी की आशंका से घबराए वे एक दूसरे से आँख मिलाने से भी कतरा रहे थे कि कहीं उनके मन की आशंका न दिखाई दे जाए।

अस्पताल में डॉक्टर ने अपने विशेष यंत्र से हार्टबीट सुनने की असफल कोशिश करने के बाद पूछा, 'डिड यू हैव ए फ़ॉल?' नकारात्मक उत्तर सुन कर, 'आई एम सॉरी टू टेल यू फ़ॉर सम अननोन रीज़न द बेबी हैज़ स्टॉण्ड ब्रीदिंग।' जो सुना उसे समझने की कोशिश की... यह सच नहीं, यह कैसे हुआ? सब कुछ तो ठीक था? उसकी पथराई आँखों को देख, डॉक्टर उसे सांत्वना देने की कोशिश करता है, 'यू आर ए यंग गर्ल, यू कैन हैव ए हेल्दी बेबी नेक्स्ट टाइम।' और वह बाहर प्रतीक्षा करते पति से बात करने चला जाता है।

डॉक्टर के चले जाने के बाद वह बिस्तर पर अकेली लेटी फटी आँखों से छत को ताक रही है, उसकी संवेदना पर पाला पड़ गया है, पथराई आँखों से आँसू भी नहीं निकल रहे। हर दिन के अभ्यासवश उसका हाथ स्वतः पेट पर पहुँचता है कि शायद अब कुछ हरकत अनुभव हो, पर सारी कोशिश व्यर्थ। डॉक्टर से बात करके पति कमरे में आए। वह उनसे चिपट



सरस दरबारी

युववाणी-मुंबई पर युव-दर्शन की
संचालक
sarasdarbari@gmail.com

कर चीख उठी! कौन किसको
सांत्वना दे? नहीं जानते कि यह
किस कसूर की सज़ा है।

अब केवल एक शव को शरीर से
बाहर निकालना भर बाकी है;
कॉन्ट्रैक्शंस के साथ होने वाले दर्द
को वह अनुभव तक नहीं कर पा रही,
उसकी चेतना जड़ हो गई है। पोर्टर
आकर उसको ट्रॉली में शिफ्ट करके
लिफ्ट से डिलीवरी-सुइट में ले जाता
है, पति उसके पीछे-पीछे यंत्रवत
चलते हैं। बिस्तर के बगल में रखे
बेबी-कॉट पर नज़र पड़ने पर उसे
व्यर्थता की अनुभूति होती है, इस दर्द
के बाद उसे क्या मिलेगा - एक
निर्जीव शिशु। दर्द की लहरें हर चार
मिनट और फिर तीन-तीन मिनट में
पेट से होती हुई कमर की ओर चीरती
हुई शांत हो जाती हैं; उनके बीच का
अंतर इतना कम हो चला कि पता ही
नहीं लगा कि कौन सी लहर डूब रही
है और कौन सी उभर रही है। मिडवाइफ़ ने
एंटीनेटल मीटिंग में
समझाया था, दर्द से डरना नहीं
चाहिए, दर्द के बाद जब माँ अपने
शिशु को गोद में लेती है तो सारा दर्द
भूल जाती है। पर अब वह किसलिए
यह मारक दर्द सहे? एक निर्जीव
शिशु को अपने से अलग करने के
लिए इतना दर्द? गहरी क्लान्ति और
विरक्ति उसे घेर रही है, बेहतर है कि
इसे मेरे भीतर ही रहने दें।

नोट्स में लिखा था कि 'हज़बैंड टू बी
प्रेज़ेंट ऐट डिलीवरी' पर पति में इतना
साहस नहीं कि एक शव का प्रसव
देख सकें। चेहरे पर लगे ऑक्सीजन-
मास्क के भीतर उसकी चीखें डूब

जाती हैं।

'पैंट थ्रू द मास्क, यू आर डूइंग वैल,
लव', मिडवाइफ़ उसका हाथ पकड़
कर प्रोत्साहित करती है। एक और
दर्द की लंबी लहर, 'यू कैन पुश विद
द नेक्स्ट कॉन्ट्रैक्शन।'

'आई कांट पुश ऐनी मोर।'

'यू कैन, यू आर वेरी ब्रेव, आई कैन
सी द हैड, पुश अगेन! न जाने कहाँ से
शक्ति आई, और उस निष्फल पीड़ा
का अंत; प्लसेंटा बाहर। मिडवाइफ़
के हाथ में खून से सनी अपनी बेटी
को छाती से लगाने के लिए वह हाथ
बढ़ाती है, पर मिडवाइफ़ पीछे हट
जाती है, 'नो लव, यू विल गेट
अपसेट!'

वह बस एक बार जी भर के देख तो
ले उस नन्ही जान को, अंतिम बार!
मिडवाइफ़ एक कपड़े में लपेट कर
उस शरीर को कमरे से बाहर ले गई,
वह शून्य आँखों से दरवाज़े को तकती
रह गई। उसे लगा कि मिडवाइफ़
जिसे ले गई थी, वह एक शरीर भर
था, बेटी की आत्मा उसकी अंतरात्मा
से मिल गई है, वहाँ से उसे कोई
अलग नहीं कर सकता, मौत भी
नहीं।



कोविड में माता पिता को खोने के
बाद पाँच वर्ष के अबोध संयम को
उसके चाचा-चाची के हवाले कर दिया
गया। इस मजबूरी को ढोते चाचा-
चाची के प्रेम को वह सदा तरसता
रहा; छोटी छोटी ज़रूरतों के लिए मन
मारकर रह जाता। दसवीं तक आते
आते उसने ट्यूशन पढ़ाकर और कभी
अखबार बेचकर अपनी फ़ीस का
इंतज़ाम किया। नतीजा वही हुआ;
किसी मामूली कॉलेज में दाखिला
मिल गया। डिग्री भी मिल गयी पर
नौकरी; उसका अधिक समय
अखबारों में नौकरी के लिए अर्जी देने
में बीतता। किस्मत से बुलावा आ भी
जाता तो वहाँ उम्मीदवारों की कतार
देखकर ही उसका दिल बैठ जाता;
उससे बेहतर रिज़ल्ट वाले उसी कतार
में खड़े मिलते।

रोज़ सुबह आँखों में उम्मीद और दिल
में हौसला लिए वह निकलता और हर
शाम मायूसी से झुके कंधे और ग्लानि
के साथ घर लौटता। हिकारत से
परसा भोजन गले से लगभग

लीलकर, वह किसी तरह रात बिताता और अगले दिन फिर उसी जंग में कूद जाता। बेरोज़गारी का बोझ उसे कुचल रहा था और अपमान के कोड़े उसे लहू-लुहान कर रहे थे।

"मुफ्त का जब खाने को मिल रहा है, तो नौकरी की क्या ज़रूरत?" चाची का ताना उसे भीतर तक छील डालता।

"आखिर कितने दिन तुम्हें बैठाकर खिलाएंगे, कोई और ठिकाना ढूँढो," चाचा के शब्द उसे भीतर तक भेद जाते।

बिना नौकरी के जाए तो कहाँ जाए, सिर पर एक छत के लिए भी तो पैसे चाहिए। वह बमुश्किल छोटे-मोटे काम कर अपना खर्चा निकाल रहा था। चपरासी की नौकरी भी बिना रिश्त के संभव न थी। अपमान और हिकारत का बोझ अब उससे बर्दाश्त नहीं हो रहा था। एक दिन, यूँ ही वह उदास बैठा था कि कुछ लोग उसके पास आए।

"बेरोज़गार हो?"

"जी हाँ,"

"काम चाहिए?"

"जी हाँ,"

"यह लो हज़ार रुपए।"

"किस बात के लिए?"

"कल विपक्ष की रैली है। उसे सफल नहीं होने देना है।"

"पर उसके लिए मुझे क्या करना होगा?"

"विपक्ष के खिलाफ़ नारेबाज़ी कर रैली पर पत्थर फेंकने होंगे।"

"पर मैं अकेले... कैसे?"

"तुम अकेले नहीं तुम्हारे जैसे बहुत हैं, हमारे साथ मिल जाओ, रोज़ के हज़ार रुपए मिलेंगे," कहकर वे लोग और बेरोज़गारों की तलाश में आगे बढ़ गये।

वह उन्हें जाता देखता रहा, फिर उसने मुट्ठी भींच ली।

पहचान

"इनसे मिलिए यह हैं मेरी वाइफ़, मिसेज कश्यप। मेरी सफलता के पीछे इन्हीं का हाथ है। आज मैं जहाँ भी पहुँचा हूँ, इन्हीं के त्याग, समर्पण और साथ की वजह से। मेरी प्रेरणा हैं यह।"

हॉल तालियों से गूँज उठा। शिखा चुपचाप अपनी सीट पर बैठ गई। लोग उसे आकर बधाइयाँ देने लगे।

सास ससुर ने परिचय करवाया, "यह हमारी बहू है। बहुत ही होनहार, सुघड़। पूरी तरह से समर्पित। ऐसी सेवा करती है कि बेटियाँ भी क्या करती होंगी। हमें अपने बेटे की पसंद पर गर्व है, चिराग लेकर ढूँढ़ने पर भी ऐसी बहू न खोज पाते।"

शिखा ने मुस्कुराकर सबके आगे हाथ जोड़े और भीतर नाशते का इंतज़ाम करने आ गई। बेटे अभि के दोस्त आए थे।

"मीट माय मॉम। द बेस्ट मॉम इन द वर्ल्ड। मेरी दोस्त हैं यह। अपने मन

की हर बात उनसे कर सकता हूँ। एंड शी इज़ एन एक्सीलेंट कुक। शी इज़ टू गुड फॉर वर्ड्स। उनकी जितनी तारीफ़ करूँ कम है।"

"आंटी, सो नाइस टू मीट यू। अभि बहुत खुशनासीब है।"

शिखा एकांत में बैठी सोच रही थी। पति के लिए वह मेरी पत्नी मिसेज़ कश्यप है; सास ससुर के लिए 'हमारी बहू' और बेटे के लिए 'मेरी माँ' – उसकी पहचान कहाँ हैं? इन सब के बीच शिखा कहाँ है?



5/11



सन्दीप तोमर

लेखक, आलोचक
gangdhari.sandy@gmail.com

ऑनलाइन सहानुभूति

वह रोज़ रात सोशल मीडिया पर मरने की धमकी जैसा एक पोस्ट डाल देता था और लोग रोज़ वही कॉपी-पेस्ट सहानुभूति परोसते, “डोंट डू इट ब्रो,” और मन ही मन संतुष्ट होते कि इंसानियत का फ़र्ज़ पूरा हो गया, फिर वही उसकी अगली रील पर हँसते।

असल में सबको पता था, ये भी कंटेंट है, डिप्रेशन इंप्लुएंसिंग, एंगेजमेंट बढ़ाने की ट्रिक्स।

एक रात उसने लिखा- “ये आखिरी बार है। सच में।” इस बार न सेल्फी, न इमोजी, एकदम बेअदा पोस्ट। लोगों ने सोचा, वाह! नई स्ट्रेटजी! चलो लाइक ठोककर बढ़ावा देते हैं, शायद कल कुछ और एक्साइटिंग डाले।

लेकिन अगले दिन वह सच में नहीं उठा। लाश मिली और लोगों के कमेंट्स का लेवल तुरंत बदल गया, “आरआईपी!”

“गॉन टू सून!”

“हम तो शुरू से ही कहते थे, कोई मदद करो यार।”

उसकी इस आखिरी पोस्ट पर उस सुबह तक हज़ारों लाइक्स हो चुके थे। वह मर चुका था, पर एंगेजमेंट ज़िंदा थी। प्लेटफ़ॉर्म ने नोटिफ़िकेशन भेजा, “योर पोस्ट इज गोइंग वायरल!” उसने सोशल मीडिया की सीख साबित कर दी कि मरने का सबसे अच्छा समय वही है जब ऑनलाइन लोग फ़ुरसत में हों।



भाग्य

सुबह का समय था। बच्चे कचड़ा बीन रहे थे। तभी आशुतोष बाबू अपने हृष्ट पुष्ट कुत्ते को पुचकारते हुए घर से बाहर निकले। आशुतोष बाबू प्रतिदिन सुबह के समय अपने कुत्ते के गले में पट्टा बांधे सैर को निकलते। बच्चों की फौज इस आकर्षक कुत्ते के पीछे हो लिया करती। वे कचड़ा बीनने का काम छोड़कर उसके पीछे-पीछे चलने लगते।

आशुतोष बाबू सैर के बाद शहर के चौराहे पर अवस्थित एक होटल में गये। कुत्ते के नाश्ते का समय हो गया था। आशुतोष बाबू ने होटल के नौकर



पुष्पेश कुमार पुष्प

pushpeshkumar530@gmail.com

को आवाज़ देकर बुलाया, “अरे रामू, हमारे बच्चे के लिए नाश्ते की व्यवस्था करो।”

“जी, मालिक क्या दूँ?” रामू ने पूछा।

“इसके लिए दूध और बिस्किट। मेरे लिए एक कप चाय लाना।” आशुतोष बाबू ने कुत्ते को पुचकारते हुए कहा।

रामू ने आशुतोष बाबू के आदेशानुसार दूध और बिस्किट कुत्ते के सामने रख दिया। कुत्ता बड़े चाव से नाश्ते का लुत्फ उठा रहा था।

बच्चे लालायित नज़रों से देख रहे थे। बच्चे अब नज़दीक आ रहे थे कि शायद एक-दो बिस्किट उन्हें भी मिल जाएं। लेकिन उनके निकट आते ही आशुतोष बाबू गरज उठे, “हरामी के पिल्ले दूर हट। बिस्किट चुराना चाहता है।”

बच्चे अपने काम पर लौटते हुए सोच रहे थे, ‘काश! वे भी आशुतोष बाबू के कुत्ते होते ...’



काशी के घाट पर दो युगद्रष्टा

डॉ. अर्जुन गुप्ता 'गुंजन'

प्रबंधन सूचना तंत्र अधिकारी, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश
arjun_shaw2002@yahoo.co.in



समय: 1936 की एक साँझ, अस्सी घाट, वाराणसी। गंगा में दीप जल रहे हैं।

जयशंकर प्रसाद: (चाय की चुस्की लेते हुए) प्रेमचंद जी, आज आपकी 'गोदान' का एक अंश पढ़ा। होरी का दुःख पढ़कर आँखें भर आईं। आप तो यथार्थ की मिट्टी को सीधे कागज के पन्नों पर उतार देते हैं।

मुंशी प्रेमचंद: (मुस्कुराकर) और आप प्रसाद जी? 'कामायनी' में तो आपने मनुष्य के पूरे मन का ही महाकाव्य रच दिया। मैं जहाँ खेत-खलिहान की बात करता हूँ, आप वहाँ आत्मा के हिमालय पर चढ़ जाते हैं। दोनों का रास्ता अलग, मंज़िल एक ही तो है - मनुष्य, मानव।

प्रसाद: मंज़िल एक है, पर पीड़ा अलग-अलग। आप किसान की भूख लिखते हैं, मैं मनुष्य की प्यास। भूख रोटी से बुझती है, प्यास... वो तो आनंद, सौंदर्य, श्रद्धा माँगती है। कहो तो, क्या होरी को सिर्फ बैल चाहिए या मन की शांति भी?

प्रेमचंद: (गंभीर होकर) शांति चाहिए प्रसाद जी, पर पहले पेट। भूखा

मनुष्य श्रद्धा नहीं समझता। मैंने 'नमक का दारोगा' में ईमान लिखा, 'कफ़न' में व्यवस्था का नंगापन। जब तक व्यवस्था बदलेगी नहीं, तब तक कामायनी के मनु भी रोएंगे। आपका 'आँसू' तो राजमहल का दुःख है, मेरा 'पूस की रात' झोपड़ी की ठिठुरन।

प्रसाद: (हल्की हँसी) और इसीलिए हिंदी धन्य है, प्रेमचंद जी। उसके पास एक साथ 'आँसू' भी है और 'पूस की रात' भी। छायावाद अगर आसमान है तो आपका यथार्थवाद धरती। पतंग तभी उड़ती है जब डोर ज़मीन से बँधी हो। मैं सौंदर्य का उपासक, आप सत्य के। पर शिव तो सत्यं, शिवं, सुंदरम् तीनों हैं न?

प्रेमचंद: सत्य कहा। तभी तो 'हंस' और 'इंदु' साथ-साथ चले थे। आप 'इंदु' के संपादक, मैं 'हंस' का। आपने कविता को पंख दिए, मैंने कहानी को पाँव। एक दिन लोग पूछेंगे - प्रेमचंद बड़े या प्रसाद? उत्तर होगा - गंगा बड़ी या हिमालय? दोनों एक-दूसरे से हैं।

प्रसाद: (दीपदान करते हुए) देखो प्रेमचंद, ये दीप। तेल खेत का है, बाती किसान की, लौ... लौ मेरी

कामायनी की। अलग कहाँ हैं हम? तुम युग की कथा कहते हो, मैं युग की व्यथा। कल को कोई आएगा जो कथा और व्यथा को एक कर देगा।

प्रेमचंद: (उठते हुए) तब तक हम अपना-अपना धर्म निभाएँ। आप श्रद्धा और इड़ा का संवाद लिखें, मैं होरी और धनिया का। भारत का मन दोनों से पूरा होगा। चलें? उधर 'जागरण' वाले छपाई का तकाजा कर रहे हैं।

प्रसाद: (साथ चलते हुए) चलो। पर हाँ, अगली बार 'कंकाल' पर भी बहस होगी। तुम तो समाज का पोस्टमार्टम कर देते हो भाई!

(दोनों हँस पड़ते हैं। गंगा की लहरें 'हर-हर महादेव' के साथ उनकी हँसी को भी बहा ले जाती हैं।)

नोट: यह वार्तालाप ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित कल्पना है। दोनों साहित्य-महारथी 1920-36 के काल-खंड में वाराणसी में साहित्य सर्जन में सक्रिय थे और 'हंस', 'इंदु', 'जागरण' जैसी पत्रिकाओं से जुड़े थे।



सिन्धी-हिन्दी ग़ज़ल लेखन और अनुवाद



देवी नागरानी

सेवानिवृत्त शिक्षिका, बहुभाषी पुरस्कृत लेखिका
dnangrani@gmail.com

ग़ज़ल लेखन की राह की पथिक बनना मेरे लिए एक ऐसे गुलशन में प्रवेश करना था जहाँ सदाबहार यादें अमर होती हैं; सालों बाद भी यादों के वे सुमन कभी नहीं मुरझाते। सिन्धी भाषा में ग़ज़ल की नींव रखी उस्ताद दादा वफ़ा जी ने, जिन्होंने मेरी सोच को हर संभव तरीकों से ग़ज़ल की विधा और उसकी लेखन कला की बारीकियों से परिचित करवाया।

सिन्धी कुछ-कुछ पढ़ना आता था, लेकिन लिखने के प्रयास में दादा प्रभु वफ़ा छुगानी मेरे गुरु बन गए; जो ग़ज़ल लेखन में सिन्धी के प्रलेखित हस्ताक्षर थे। मेरे सामने एक नए संसार का दरवाज़ा खुला - सिन्धी भाषा के विस्तार से मेरा परिचय काव्य से, खासकर ग़ज़ल विधा से हुआ - वज़न, काफ़िया, रदीफ़ - जैसे लफ़्ज़ों और ग़ज़ल में उनके इस्तेमाल की अहमियत जानी। यह सब सीखने के दौरान, और बाद में, उनके साहित्य सागर को पढ़ते हुए मैंने जाना कि फ़न तपस्या की हद तक ले जाता है। दुष्यंत कुमार का एक शेर है जो कहता है:

कैसे आकाश में सुराख नहीं होता

एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो

शायद यही जज़्बा मेरे अंदर जाग उठा। अन्यथा, अपनी भाषा के इल्म से नावाकिफ़ मुझ जैसी महिला किस तरह साहित्य के इस अथाह सागर का किनारा पाती। नई राह पर चलते हुए अज्ञानता के अंधेरे में भी रोशनी के बारे में सोचना यकीनन मेरे अख्तियार में था, पर उसे ज़ाहिर करना कराना, उसके बस में है जो मेरी राहों का पथ प्रदर्शक है। किसी ने खूब कहा है: 'लफ़्ज़ मजबूर है इज़हार हकीक़त के लिए / मुझ पर जो कुछ भी गुज़रती है, सुनाऊँ कैसे?' मेरे दिल ने भी गवाही देते हुए कहा: 'जो शब्दों को सच की सियाही से लिख दे / क़लम से भी होती है ऐसी इबादत।'

ग़ज़ल लिखने में मौसिकी का बड़ा हस्तपेक्ष है। शुरुआती दौर में, गाते गाते लिखने में गीत या ग़ज़ल में बहर की गलतियां होती थीं पर ग़ज़ल के अदब-आदाब सीखते हुए और वफ़ा जी के सहकार से ग़ज़ल विधा का असली आगाज़ हुआ। नित नए विचार, नयी युक्तियों से अभिव्यक्त करना, शब्दों का रख-रखाव, काफ़ी

कुछ समझ आने लगा। 2004 में मेरा पहला सिन्धी ग़ज़ल संग्रह 'ग़म भिनल खुशी' नाम से प्रकाशित हुआ, जिसने मेरे लेखन के जज़्बे को एक दिशा के साथ कुछ पुख्तगी बख़्शी। ज्यादा कुछ न कहकर एक इत्तेफ़ाक़, जो संगीत से वाबस्ता है, का ज़िक्र करना चाहूंगी, जो ज़ाहिर करता है कि साहित्य और संगीत का आपस में कितना गहरा तालमेल है! एक दिन मैं ग़ज़ल के चार शेर लिखकर दादा के पास ले गई।

मोटी मुंद न आह बहार जी,
मूंखे को खिज़ां जो अलम न आ
मुहिंजो वासतो ई गमन सां आ,
न मिले खुशी त को ग़म न आ।

इसे पढ़कर दादा कुछ हैरानी से मेरी ओर देखते रहे और फिर सवाल किया कि इस बहर में मैंने ये शेर किस तरह लिखे हैं, यह बहुत मुश्किल बहर है; मुस्तफ़इलुन, मुस्तफ़इलुन 11212, 11212 में लिखी तहरीर में लय ताल और अक्षरों का चुनाव भी काफ़ी हद तक सही था। सिर्फ़ मात्राओं को कहीं गिराना पड़ा, कहीं संधि से सुधार करना जायज़ था। यह हुनर भी इस ग़ज़ल के दौरान सीखने को

मिला। बात यह थी कि मेरे संगीत आचार्य ने उसी हफ्ते मुझे एक गज़ल सिखाई थी, जिसके अलफ़ाज़ थे: ‘न खिज़ां में है कोई तीरगी, न बहारों में कोई रोशनी / ये नज़र नज़र के चराग़ है, कहीं जल गए कहीं बुझ गए।’

मैंने उसी धुन में कोशिश करते हुए अपनी भाषा के शब्द इस्तेमाल किए और इस तरह नवनिर्माण की ओर मेरे कदम बढ़ते गए। उसी लय ताल में मेरी एक और गज़ल भी बाद में लिखी, जो मुझे बहुत अज़ीज़ है: ‘को रफीक़ आ न रक़ीब आ, तुहिंजो शहरु केड़ो अजीब आ / कहिं जो पढ़ी चेहरो पढां, हित केरु एडो क़रीब आ।’

गज़ल के विधि विधान से वाकिफ़ होते ही, छंद बहर की बुनियाद पर दोहे, मुक्तक नज़्म भी लिखने का प्रयास किया। पर गज़ल अधिक तवज्जो चाहती है। एक मुकम्मिल ख्याल गज़ल के शेर में जिस तरह समां जाता है, उसी तरह मैंने एक विचार को एक नज़्म का स्वरूप दिया जो इस प्रकार है:

बेरंग गुल गुलज़ार में, आदम भी बिन बू
ऐसा गुलशन क्या करूं? (अहड़ो गुलशन छा करियां)
रेती रेती घर हुए, आदम, भीत डहे
ऐसा गुलशन क्या करूं? (अहड़ो गुलशन छा करियां)

रब की मज़ी है, जो चाहे करा ले, मैं बेबस, सब उसके बस में। कुदरत का इशारा भी एक करिश्मा है, वरना क्या मेरी जात और क्या क़द कलम का।

कहते हैं जिंदगी रक्स है, हमें सिर्फ़ कदम उठाना है, पहले एक फिर, दूसरा। तो आओ पहला कदम आज लेते हैं और दूसरा उसके बाद। कल, कल नहीं, आज, आज नहीं, अभी इसी वक्त। आज का यह पल हमारा है, इस पर हमारा अख्तियार है। कदम बढ़ाकर आओ तो आगे बढ़े, और अगर जिंदगी रक्स है, तो आओ रक्स करें! फिर सिलसिलेवार दो गज़ल संग्रह ‘आस जी शम्भू’ (2008) और ‘गज़ल’ (2012) में प्रकाशित हुए। इस दिशा में मुझे खुला आसमान देते हुए कुदरत ने मुझे मिलवाया हमारे श्री आर पी शर्मा जी से, जो गज़ल की विधा में ‘पिंगलाचार्य की उपाधि पा चुके हैं। उनसे मिलने और बिछड़ने के बीच के यादों मेरे दिल की धड़कनों में बसी हुई है, कुछ इस तरह जैसे खुशबू फूल की, जो हाथ को छू ले तो हाथ खुशबू से ओत-प्रोत हो जाये। यही खुशबू सद्भावना बनकर इन शब्दों में समा गई है।

हिंदी गज़ल के प्रांगण में

मेरे सभी गज़ल संग्रह चरागो-दिल’ ‘दिल से दिल तक’, लौ दर्द-ए-दिल की’ और ‘सहन-ए-दिल’ जो वर्ष 2007, 2008, 2010, 2017 में प्रकाशित हुए, वे सम्माननीय श्री आर पी शर्मा ‘महरिष’ जी को समर्पित हैं, जो गज़ल के शाही मार्ग के पिंगलाचार्य रहे और रहेंगे। देश के अनगिनत गज़लकारों का मार्गदर्शन करते हुए, उन्होंने न जाने कितने संग्रहों की प्रस्तावनाएँ व समीक्षाएँ लिखीं। मैं भी उन में से एक हूँ जो उनके दर की चौखट पर जाकर खाली

नहीं लौटी। मेरी उनसे पहली मुलाक़ात 2006 में उनके घर पर ही हुई, जहाँ मैंने चलती फिरती गज़ल का सही रूप जाना, उनसे बहुत कुछ सीखा, बहुत कुछ पाया। एक दिन उन्होंने मुझे फ़ोन करके दादर अपने निवास स्थान पर आने के लिए कहा- ताक़ीद करते हुए यह भी कहा कि ‘अपनी दो गज़ल भी साथ पढ़ने के लिए ले आना।’ जब मैं वहाँ पहुंची तो मुंबई के जाने माने मय्यारी-हस्ताक्षर गज़लकार वहाँ मौजूद थे जिनमें थे श्रीमन्ना नरहरि जी, उनकी पत्नी शैलजा जी, जो खुद एक सलीकेदार सुलझी हुई शायरा हैं, लक्ष्मण दुबे, सागर त्रिपाठी, मरियम गज़ाला, मुरलीधर पाण्डे, रज़ा साहब, और जनाब अहमद वसी और अन्य। मेरे लिये वे सभी अपरिचित थे, और उनके बीच मैं इक नौसिखिया अभी-अभी महरिष जी की छत्रछाया में कुछ कुछ गज़ल की परिभाषा को समझने लगी थी। पर ये दुआओं का असर हो जैसे, लगा मेरा वहाँ जाना एक मक़सद को पाने का पहला क़दम बन गया। और फिर जल्द ही 2007 में मेरा पहला गज़ल संग्रह “चरागो-दिल” मंज़रे-आम पर आया जिसके विमोचन के अवसर ने मेरे लिए दुआओं के दर खोल दिये।

मेरा दूसरा गज़ल संग्रह ‘दिल से दिल तक’ 2008 में और 2009 में ‘लौ दर्द-ए-दिल की’ प्रकाशित हुए। मेरे सभी संग्रहों में प्रस्तावना श्री महरिष जी ने लिखी और विमोचन भी उन्हीं के शुभ हाथों से होता रहा। 2011 और 2012 के बीच मैंने ‘देवांगन’ नाम के

संग्रह की पाण्डुलिपि उन्हें देते हुए शुभाशीष लिखने की अर्ज की। जब मैं विदेश लौट रही थी तो उन्होंने 18 अगस्त 2012 को हस्तलिखित 'शुभाशीष' मुझे देते हुए कहा कि तुम्हारे सभी संग्रह: 'चराग्रे-दिल', 'दिल से दिल तक', 'लौ दर्दे-दिल की' नाम से हैं: इसका टाइटल भी 'सहन-ए-दिल' रख लो, जिसका मतलब है 'दिल का आँगन'। मुझे उनकी यह बात बहुत भाई और यही तय किया। फिर एक मोड़ ऐसा आया कि मैं अपने साहित्य से हटकर अनुवाद के तट पर आ ठहरी। 2012 से 2016 के बीच मैं सिन्धी-हिन्दी भाषा के परस्पर अनुवाद में व्यस्त रही। बस सिन्धी और हिन्द के कथाकारों की कहानियों व कविताओं का हिन्दी में अनुवाद करती रही, इसी कारण मेरी अपनी सिन्धी व हिन्दी की गज़लें, कहानियाँ, सभी पीछे छूटती चली गई।

अगस्त 2015 मैं किसी कार्यवश अमेरिका से मुंबई पहुंची। हमेशा की तरह महरिष जी से बात होती रही, उनसे मिलना भी हुआ, पर दिन-ब-दिन उनका स्वास्थ्य साथ न निभा पाने की स्थिति में रहा। यहाँ मैं यही कहना चाहूंगी कि महरिष जी से मिलने, उनसे सीखने और बहुत कुछ पाने के दौरान मुझे उनके परिवार के सभी सदस्यों से जो अपनत्व और सम्मान मिला है वह मेरे लिए अनमोल वसीयत है। एक दो बार महरिष जी ने पूछा भी कि 'सहन-ए-दिल' कब तक प्रकाशित करवाओगी?

'बस इसी साल आ जाना चाहिए।'

और सच तो यह है कि मैं मुंबई में उस संग्रह के लिए बहुत प्रयासरत रही, पर वह काम न बन पाया। जो जब होना होता है, तभी होता है; कभी-कभी हमारी बंद मुट्ठी से भी परिंदे उड़ जाते हैं। कुछ ऐसे ही मैंने महरिष जी को अपनी तमाम तन्मयता के साथ उस आराध्य में लीन होते हुए देखा। उस समय वहाँ मेरा मौजूद होना भी मेरी क्षति को कभी पूरा नहीं कर पाया। आज वे हमारे पास हैं, हमारे साथ हैं, उनके शब्दों में जिनमें से झाँकती है, 'गज़ल के एक मौन साधक की छवि' जो गज़ल के शायकों के लिए, उनकी रहबरी के लिए कई पथप्रदर्शक संग्रह पीछे छोड़ गए हैं। 'गज़ल लिखना सीखें' उनका आखिरी संग्रह है जिसका उन्हें भी इंतज़ार रहा, पर समय ने उन्हें समय नहीं दिया कि वे उसे देख पाएँ। नवम्बर माह 2015 में वे अपनी जीवन यात्रा पूरी करके अपने अनंत धाम के होकर रह गए, एक अथाह अश्रुओं के सागर के बीच परिवार जन, श्रोतागण व साहित्य संसार को छोड़कर। वही संग्रह यश प्रकाशन से 2016 में सामने आया, जिसकी प्रति अभी मेरे हाथ में है। देख रही हूँ, पहले पन्ने पर उनके सुपुत्र श्री रमाकांत शर्मा के हस्ताक्षर, उनके नीचे तारीख 22 जनवरी 2016, उन्होंने विषादपूर्ण स्थिति में यह मुझे सौंपते हुए कहा, "देवी जी, यह संग्रह दो दिन पहले ही आया है...काश..." और मेरे सामने ही डाक से आया हुआ छोटा पार्सल खोलकर यह प्रति मुझे दी। आठ दिन बाद मैं अमेरिका लौट रही थी। अब समय आया है कि

मैं यह संग्रह 'देवांगन' उनके शब्दों में देवों-फरिश्तों का प्रांगण अब 'सहन-ए-दिल' के नाम से उन्हें समर्पित करते हुए, फिर से गज़ल की दुनिया में नए रूप से श्री गणेश करूँ।

'सहन-ए-दिल' गज़ल संग्रह 2017 में अयान प्रकाशन ने संपन्न किया। आज महरिष जी के प्रांगण से पाई गज़ल की सौगात मेरे दिल पर दस्तक देती हुई उन्हीं सुगंधित यादों को फिर से रोपना चाहती है। यह दिल से गज़ल तक का सिलसिला अब अपनी यात्रा के अंतिम पड़ाव पर पहुंचना चाहता है। 2023 साल के आगाज़ में 'दरिया-ए-दिल' नाम का गज़ल संग्रह अयान प्रकाशन की ओर से मंज़रे आम पर आया है, जो मैंने उस गुरु को समर्पित किया है जो तब थे, आज नहीं है, पर उनके शुभाशीष वचन मुझे उनसे कभी महरूम नहीं रखेंगे।

अनुवाद के तट पर

और अचानक, हाँ अचानक ही होते हैं हादसे। कुछ ऐसा ही एक मधुर हादसा मुझे अनुवाद के मोड़ पर ले आया। यह भी उस बहते सागर का तट था जहां खड़ी होकर मैं कभी-कभी अपनी सिन्धु घाटी की सभ्यता को अपनी ओर तकते देखा करती थी; भूली बिसरी यादों के गलियारों में घिरी रहकर सोचा करती थी कि अगर मैं वहां होती तो कैसा होता? एक कशिश अनजानी सी उमंग बनकर मेरे मन में उठने लगी, जिसमें कुछ तो शामिल था जो मैं न जान पाई।

उन दिनों हरी मोटवानी जी, जो 'कुंज' पत्रिका के संपादक थे, एक

दिन बांद्रा में मेरे घर आए और मुझे पत्रिका की चार प्रतियां उस देकर उसकी मेंबरशिप के लिए राजी कर गए। सिन्धी गज़ल की सराहना करते हुए प्रकाशन के लिए मेरी दो गज़लें भी ले गए।

इसे मैं सदस्यता शुल्क नहीं कहूंगी, यह मेरे लिए एक अनमोल निवेश रहा, जिसने मुझमें सिंधी भाषा के लिए कई जज़्बे जगा दिए। यह 2009 या 2010 का दौर था, जब मैं हिंदी, सिन्धी व अंग्रेजी में कुछ पन्ने डायरी के रूप में लिख लिया करती थी। अब तक मेरे छह गज़ल संग्रह प्रकाशित हो चुके थे। मैं 'हिंदुसी' इंटरनेशनल सिन्धी पेपर में सिन्धी-हिन्द के कथाकारों की कहानियाँ अरबी सिंधी में पढ़ती रही। अचानक शिद्वत से मन में सिन्धी साहित्य को हिंदी साहित्य जगत में लाने की चाह उठी; अनुवाद करने की ठान ली। वो कहते हैं न, सफ़र मंजिल की ओर ले जाता है, बस यही बात थी जिसे मैंने एक गीतनुमां गज़ल में ढालते हुए लिखा था:

हमें अपनी सिन्धी ज़बाँ चाहिए
सुनाए जो लोरी वो माँ चाहिए
कहा किसने सारा जहाँ चाहिए
हमें सिर्फ़ हिन्दोस्ताँ चाहिए
जहाँ सिन्धी भाषा के महकें सुमन
वो सुंदर हमें गुलसिताँ चाहिए
जहाँ भिन्नता में भी हो एकता
हमें एक ऐसा जहाँ चाहिए
मुहब्बत के बहते हों धारे जहाँ
वतन ऐसा जन्नत निशाँ चाहिए
तिरंगा हमारा हो ऊँचा जहाँ
निगाहों में वो आसमाँ चाहिए

खिले फूल भाषा के 'देवी' जहाँ
उसी बाग़ में आशियाँ चाहिए।

अनुवाद के मंच पर पहला क़दम मुबारक रहा। आगाज़ हरी मोटवानी जी की कहानी 'बारूद' से हुआ। श्री सेतपाल जी की पत्रिका 'प्रोत्साहन' जो मुंबई से निकलती थी, यह अनुवाद उसमें प्रकाशित हुआ। यह पत्रिका ज़्यादातर अनुवाद व हिंदी लेखकों को प्रकाशित करती थी और सिन्धी भाषियों के बीच भी बहुत जानी-मानी पत्रिका रही। उस पहली कहानी के अनुवाद के बाद मैंने हिंदी की एक पत्रिका में प्रकाशन के लिए उसे भेजा। उस प्रकाशन के बाद, कुछ ख़त आये जिन्होंने मेरे भीतर अनुवाद करने के शोले को हवा बख़्शी। ततपश्चात मैंने अनेक हिन्द व सिन्धी के कहानीकारों की कुछ चुनिन्दा कहानियों का हिंदी में अनुवाद किया। अनुदित कहानियों के प्रकाशन के साथ मेरा हिंदी साहित्यधारा से व उन पत्रिकाओं के संपादकों से राबता बढ़ता रहा और मेरे साहित्य के संसार में पदार्पण का भी विस्तार हुआ। बस फिर घर में अनेक हिंदी पत्रिकाएं भी आने लगीं।

इसी सिलसिले की एक पुख्ता कड़ी जो अनुवाद के साथ जुड़ी उसका प्रकाशन 2012 में 'और मैं बड़ी हो गई' के नाम से हुआ। इस संग्रह में 20 कहानियों का अनुवाद शामिल है जिसमें जाने माने सिंधी लेखकों की कहानियां हैं, जो मैंने कभी सिंधी पत्रिकाओं से, तो कभी उनके सिंधी संग्रहों से लीं थीं - हरी मोटवानी, ए जे उत्तम, कमला मोहन बेलानी,

ठाकुर चावला, कीरत बाबानी, बंसी खूबचंदानी, कला प्रकाश, जगदीश लछानी, कमला गोकलानी, लाल पुष्प, नारायण भारती, सतीश रोहड़ा, इंदिरा वासवानी, वीना शिरंगी, माया राही, व हरि पंकज रहे। सिन्धी भाषा के कुछ पुरातन शब्द, जिनसे मेरा दूर तक का परिचय नहीं रहा, कहानी में पाकर उलझ जाती। कभी उन लेखकों को फोन करती और उसका मतलब विस्तार से पूछ लेती, फिर अपनी भाषा भाव के संतुलन अनुसार अनुवाद में शामिल करती। कभी-कभी सिन्धी डिक्शनरी का भी इस्तेमाल कर लिया करती थी, जिससे मेरी सिंधी भाषा का ज्ञान भी बढ़ने लगा।

यह संग्रह संयोग प्रकाशन के निदेशक श्री मुरलीधर पाण्डेय ने प्रकाशित किया, जिसमें मुंबई की प्रलेखित लेखिका संतोष श्रीवास्तव जी ने आमुख लिखने की स्वीकृति हर्ष भाव से देते हुए इसे सम्पूर्णता तक पहुँचाया। 'हिम्मते मरदां, मददे खुदा' वही बात हुई। जिस राह पर मैं चली न थी, वक्रत ने उसी पर ला खड़ा किया। ये वो पल थे जब मेरे भीतर शोर में खामोशी, शोलों में शबनम, और सन्नाटों में संगीत का अहसास भर दिया।

'और मैं बड़ी हो गई' संग्रह का भव्य लोकार्पण और साहित्यकार सम्मान समारोह संस्कार सारथी संस्थान ट्रस्ट-राजस्थान के तत्वावधान में 12 मार्च 2013 को गांधी शांति प्रतिष्ठान में संपन्न हुआ, जिसमें डॉ. श्याम सिंह

‘शशि’, डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव, डॉ. कमल किशोर गोयनका, आचार्य धीरेंद्र त्रिपाठी, डॉ. योगेंद्र शर्मा ‘अरुण’, डॉ. अतुल जैन, व श्री अजय चौधरी उपस्थित थे; लगा जैसे मैं अपने वतन लौट आई हूँ, अपनी मिट्टी से जुड़ते हुए सिन्धु घाटी की सभ्यता से जुड़ रही हूँ। पूर्णता का एक अर्थपूर्ण अहसास मेरे होने और न होने के बीच को भरता रहा; सच में मैं बड़ी हो गई थी। इस अहसास ने मेरे रुख को एक नया मोड़ दिया। मैं सिन्धु व सिन्धु के कथाकारों को पढ़ते पढ़ते, चुनिन्दा कहानियों का अनुवाद करने लगी। यूँ लगा जैसे मेरा माज़ी फिर से इक बार मेरे सामने जी उठा हो। धड़कनों में वो किरदार, अपनी समस्याओं और समाधानों की तलाश में दरबंदर होते हुए आँखों के आगे रक्स करते हुए तैरने लगे - ये सभी मंज़र हमारे विस्थापन के दौर के जीते जागते अक्स थे - ये कहानियाँ हमें अपने साथ हमसफ़र करने को मुन्तज़र हैं। कभी वक़्त ने वक़्त दिया तो यादों में प्रवाहित अपने जीवन की धाराओं को समेट कर आपके सामने ले आऊँगी।

अनुवाद के मद्देनज़र मेरे मन की भावनाएँ सिन्धी कहानियों को हिंदी फलक पर ले आने को बेक़रार रही; 2019-2020 तक निरंतर छह सात साल बस एक ही काम किया, अनुवाद का। सहकार देने वाले शौकत हुसैन शोरो जी का नाम लिए बिना मैं यह लेखन संपूर्ण नहीं कर सकती। तस्वीरों को पहचानने में, परिचय हासिल करने-करवाने में शोरो जी ने मदद की। बारिश की दुआ

(कहानी संग्रह-2012), अपनी धरती (कहानी संग्रह-2013), रुहानी राह जा पांथीअड़ा (काव्य-2014), बर्फ़ जी गरमाइश (लघुकथा-2014), आमने-सामने (हिन्दी-सिन्धी काव्य अनुवाद-2016), आँख ये धन्य है (नरेंद्र मोदी काव्य-2017), चौथी कूट (वरियम कारा का कहानी संग्रह-प्रकाशक - साहित्य अकादमी - 2018)।

सिन्धी से हिन्दी अनुवाद: मैं बड़ी हो गई (कहानी-2012) सिन्धी कहानियाँ (कहानी-2014), पंद्रह सिन्धी कहानियाँ (2014), सरहदों की कहानियाँ (कहानी-2015), अपने ही घर में (कहानी-2016), दर्द की एक गाथा (कहानी 2016), एक थका हुआ सच (अतिया दाऊद काव्य -2016), विभाजन की त्रासदी (कहानियाँ विभाजन की-2017), प्रान्त प्रान्त की कहानियाँ (बहुभाषी-कहानी-2018), कविता की पगाडंडियां (सिन्धी काव्य-2019)। बारिश की दुआ (कहानी संग्रह-2012) और अपनी धरती (कहानी संग्रह-2013) में हिंदी के जाने माने कथाकारों व प्रवासी लेखकों की कहानियाँ शामिल हैं। इन संग्रहों की कम से कम 80 कहानियाँ कुछ सिन्धु के, कुछ हिन्द के सिन्धी साहित्यकारों की हैं। एक बात और जो मेरी इस यात्रा के प्रयास को शिखर पर ले आई वह है, एक साधक श्री राजा शर्मा का इस दिशा में योगदान, 2017-18 के बीच जिन्होंने अपनी आवाज़ और टेक्स्ट में सभी कहानियों को एक तार में पिरोकर यूट्यूब पर उपस्थित कर

दिया, फिर दुबारा उन्हें नये सिरे से 2023 में रिकॉर्ड करके प्रस्तुत किया। जब मैंने शौकत जी को उनकी कहानी ‘होंठो पर उड़ाती तितली’ का लिंक भेजा तो वे हिंदी भाषा न पढ़ने के कारण कुछ उलझे पर सुनकर वे जान पाए कि वह उनकी लिखी कहानी है। राजा शर्मा जी ने इस कार्य को मुकम्मल करते हुए सभी लेखकों की तसवीरें जोड़ीं और उनके नाम अंग्रेज़ी में लिखे। यह सब अपने आप, एक स्वर्ण सपने की तरह साकार होता चला गया, कुछ यूँ ही, एक मधुर हादसे की मानिंद। चाहत अपना लक्ष्य पा चुकी थी और मुझे अपना रचना संसार भी पुकार रहा था; मैंने खुद से अनुवाद न करने की भावना को त्यागने का वादा कुछ सोचकर नहीं किया, हम सिन्धी, बिना प्रान्त के हिन्द की धरती पर बस गए और चाहा कि हमारी सिन्धी भाषा अपनी सिंधु घाटी की सभ्यता की सुगंध हिन्द की फिज़ाओं में घुलकर पाठकों तक पहुंचे; आज इस क्षितिज पर अनुवाद एक नई रोशनी फैला रहा है जिसमें काल और समय की सभी परीधियाँ सिमट गई हैं। इसी दिशा और दशा को मेरे मन की भावनात्मक आस्थाएं इस गज़ल के रूप में मुस्कराती हैं, गुनगुनाती हैं, एक अटूट विश्वास के साथ कि -

नाम तेरा नाम मेरा, कर रहा कोई और है
खालीपन जीवन का ‘देवी’ भर रहा कोई और है
क्या मेरी पहचान है, क्या जात, क्या
औक़ात क्या
नेक नामी संग मेरे कर रहा कोई और है।



डायरी शेष-अशेष: डायरी के पन्ने

अनीता वर्मा

पूर्व हिंदी प्राध्यापक, स्वतंत्र पत्रकार
anita.verma.in@gmail.com



गोवा के समुद्र तट सैलानियों के भीतर छिपे आह्लाद को बाहर निकालते हैं और उन्हें अपने मन का करने को कहते हैं। खिलखिलाते हुए बच्चे रेत के कणों के साथ चमकते हुए से। लहरें भी तो जीवन की तरह ही होती हैं ना। कभी तेज़ गति से दौड़ लगाती हुई भीतर तो कभी यूँ ही किनारे तक पहुँचते पहुँचते वापिस लौट जाती हुई। सब कुछ उस उपन्यास की तरह जिसमें रोमांच भी है, रोमांस भी है। जिसमें प्रवाह का वो अंश है जो बहना जानता है तो भिगोना भी। तट पर बैठी यही सोच रहीं हूँ।

असल में गोवा में दो तरह के जीवन चलते हैं। एक दिन में जो तटों पर भीगता भिगोता है और एक वो जो रातों की आवारगी में अपने पूरे आवारापन के साथ मधुशाला में जाकर सब भेद भुला देता है। यहाँ पर आकर सैलानी इस कदर मदिरा की महक में डूब जाते हैं कि जैसे यही तो असली समुद्र है।

रात को पति के साथ कसीनो जाना हुआ। पानी के बीच बने बड़े बड़े पाँच सितारा होटलों को मात देते कई

मंज़िलों वाले होटल जैसे जहाज़ टाइटेनिक की याद आ गई। विदेशों में भी ऐसे बहुत से क़ूज़ में जाना हुआ, वहाँ लोग आराम से बिना किसी जल्दबाज़ी के प्रेम में डूबे हुए एक दूसरे को महसूस करते से दिखे।

पर यहाँ तो कुछ ऐसा वातावरण था जिसमें देह प्रमुख थी बाक़ी सब गौण। बूढ़े जवान अधेड़ सबकी एक अलग तरह की मानसिकता देखने को मिली। प्रेम की सभी परिभाषाएं, कहानियाँ यहाँ आकर जैसे समाप्त हो गई। पैसा कमाने से इतर जीतने की ललक, स्त्री की देह को आँखों में भर लेने की कोशिश और उससे भी अधिक सब बंधन तोड़कर, सभी मर्यादाओं को नकार कर जीवन को मात्र देह तक ही सीमित रखने वाली एक भीड़। सब कुछ स्त्री पुरुष की सहमति से। पुरुषों को आँखों से टटोलती स्त्रियाँ, सभी वर्जनाओं को तोड़ती हुई अपने स्त्री होने को नकारती हुई स्त्रियाँ। अजब ग़ज़ब संसार और कई तरह के रहस्यों को अपने भीतर समेटे जीवन जीते लोग। उन सबके बीच उनकी तरह होकर जीना चाहूँ भी तो नहीं हो सकता। मैंने प्रेम को घूँट घूँट पिया है। जीवन

को अपने होने के भरपूर आनंद का अनुभव किया है। जीवन सार्त्र का अस्तित्ववाद है। सार्त्र के अनुसार, हम सभी स्वतंत्र हैं, लेकिन हम अपनी स्वतंत्रता का उपयोग कैसे करते हैं, यह हमारी ज़िम्मेदारी है।

कतरा कतरा एहसास भीतर तक ले जाने में जो सुख है वो सदियों तक जीवन्त रहता है। ये क्षणिक अनुभव, सो कॉल्ड वन नाइट स्टैंड के अनुभव आज की पीढ़ी का सच हो सकते हैं पर इसमें प्रेम की वो बरसों तक रहने वाली कसक नहीं है। उनके बीच बैठे हुए ना जाने कब मेरे हाथ में भी वोदका का गिलास आ जाता है। अब मैं भी रंगीन चश्मे से सबको देख रही हूँ, हालाँकि मैं वही हूँ। ज़िन्दगी को घूँट घूँट इस वोदका के साथ जीती हुई।



हिंदी भाषा मेरे अंतरंग की भाषा है!

प्रो रेखा सेठी से अर्पणा संत सिंह की बातचीत



अर्पणा संत सिंह

गृहस्वामिनी की संपादक

arpanasantsingh@gmail.com



...पिछले अंक से आगे

अर्पणा: आपके अनुसार समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री लेखन की सबसे बड़ी उपलब्धि और सबसे बड़ी चुनौती क्या है?

रेखा: मेरे लिए भारतीय स्त्री लेखन की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सामूहिकता और साझेदारी की भावना है। वहाँ व्यक्तित्व अपनी जगह है, लेकिन अकेला नहीं; उसके पीछे एक समुदाय, एक साझा अनुभव, एक साझा घाव और एक सामूहिक स्वप्न मौजूद रहता है।

यह लेखन कृत्रिम भाषिक आडंबरों से लगभग सहज रूप से बचता है और सीधे मनुष्य के अनुभवों, संवेदनाओं और संघर्षों की बात करता है। इसकी दूसरी महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि

इसने अनेक युवा स्त्रियों को अपनी बात कहने का साहस और मंच दिया है - एक ऐसी जगह, जहाँ वे बिना माफी माँगे अपने अनुभवों को शब्द दे सकें।

तीसरी बात यह है कि स्त्री लेखन ने सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों को भी गंभीरता से उठाया है। लंबे समय तक इन प्रश्नों को स्त्री-संवेदना के साथ जोड़कर देखने में हिचक दिखाई देती थी, मानो स्त्री लेखन केवल “घरेलू” या “भावनात्मक” प्रश्नों तक सीमित हो। समकालीन स्त्री लेखन ने इस सीमा को तोड़ा है।

चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं। सबसे बड़ी चुनौती यही है कि स्त्री लेखन को अक्सर एक निश्चित खाँचे में बाँध दिया जाता है - उसे महज़ “स्त्री-समस्याओं” तक सीमित कर दिया जाता है। परिणामस्वरूप उसके व्यापक मानवीय, सामाजिक और राजनीतिक सरोकारों की अनदेखी हो जाती है और यह भ्रम पैदा होता है कि स्त्री लेखन “एक ही प्रकार की बातें” दोहराता है। समस्या विषय-वस्तु में नहीं, उसे पढ़ने की सीमित दृष्टि में है। आज जब लेखन की शैलियाँ भी

बदल रही हैं, तब स्त्री लेखन के सामने यह चुनौती भी है कि वह कथ्य और शिल्प, दोनों स्तरों पर निरंतर प्रयोग करता रहे, भाषा और संरचना, दोनों में जोखिम उठाए।

अर्पणा: अनुवाद को आप केवल भाषा का रूपांतरण मानती हैं या सांस्कृतिक संवाद का माध्यम?

रेखा: मैं अनुवाद को हमेशा एक प्रकार की रचनात्मक जुगलबंदी की तरह देखती हूँ। जैसे संगीत में दो कलाकार अपनी-अपनी धुन को मिलाकर कोई तीसरी, अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध धुन रच देते हैं, वैसे ही मूल रचना और उसका अनुवाद मिलकर एक नया काव्यात्मक-सांस्कृतिक स्पेस बनाते हैं।

अनुवादक मूल रचनाकार के साथ-साथ चलते हुए कोशिश करता है कि जिस भाषा के पाठक वह अनुवाद पढ़ेंगे, वे भी वही आनंद, वही कम्पन, वही भाव-गहनता महसूस कर सकें, जो मूल भाषा के पाठक अनुभव करते हैं। कुँवर नारायण ने कहा था कि अनुवादक का काम दूसरी भाषा के रचनाकार को अपनी भाषा की साहित्यिक परंपरा में सम्मानपूर्वक

स्थापित करना है; मैं स्वयं इस विचार से गहराई से सहमत हूँ।

मेरे लिए अनुवाद केवल शब्दों का स्थानांतरण नहीं, बल्कि संवेदना, संदर्भ और संस्कृति का संवाद है। यदि अनुवाद मात्र शब्द-दर-शब्द रूपांतरण बनकर रह जाए, तो साहित्यिक आनंद जैसे रास्ते में ही कहीं छूट जाता है। अच्छा अनुवाद मूल के प्रति निष्ठावान भी होता है और अपनी भाषा में एक नई रचनात्मकता भी अर्जित करता है; इसी दोहरी निष्ठा में उसका सौंदर्य और उसकी कठिनाई दोनों निहित हैं।

अर्पणा: विभिन्न भाषाओं के कवियों का अनुवाद करते समय आपको किन विशेष चुनौतियों का सामना करना पड़ा?

रेखा: विभिन्न भाषाओं से कविताओं का अनुवाद करते हुए हर बार एक अलग प्रकार की यात्रा शुरू होती है, और हर यात्रा अपनी विशिष्ट चुनौतियाँ लेकर आती है। कई बार कोई शब्द, कोई सांस्कृतिक संदर्भ, कोई मिथकीय संकेत लंबे समय तक समझ में नहीं आता, और उसके बिना पंक्ति का अर्थ अधूरा-सा रह जाता है। उदाहरण के लिए, जब मैं लिथुआनियाई कविताओं का अंग्रेज़ी के माध्यम से हिंदी में अनुवाद कर रही थी, तो एक शब्द के अर्थ को समझने में मुझे काफ़ी कठिनाई हुई। बाद में उस भाषा से परिचित लोगों की मदद से उसका सही आशय स्पष्ट हो सका - तभी वह पंक्ति अपने पूरे भाव के साथ खुल पाई।

दूसरी चुनौती भाषा के स्वर और लहजे को पकड़ने की होती है। बांग्ला और ओड़िया जैसी भाषाओं में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली अपेक्षाकृत अधिक मिलती है, इसलिए उनका हिंदी अनुवाद भी कुछ हद तक उसी रस और ध्वनि को सँजोए रखने की माँग करता है। वहीं पंजाबी जैसी भाषाओं के अनुवाद में अधिक बोलचाल की, सहज हिंदी उपयुक्त लगती है।

अंग्रेज़ी कविता का अनुवाद करते समय पंक्ति-विन्यास, विराम-चिह्नों की शैली और काव्यात्मक संरचना को हिंदी में उसी प्रभाव के साथ लाना भी चुनौतीपूर्ण होता है। कई बार लगता है कि कविता केवल अर्थ से नहीं, अपने साँसों के चलन से भी बनती है; विराम-चिह्न उस साँस का हिस्सा हैं।

मेरा मानना है कि अनुवाद में अनुवादक से अधिक मूल लेखक दिखाई देना चाहिए। पाठक को लेखक की शैली, उसके स्वरों और उसकी संवेदना का अनुभव हो सके - यही किसी भी अनुवादक का मूल लक्ष्य होना चाहिए।

अर्पणा: साहित्य, जेंडर अध्ययन और मीडिया अध्ययन-इन तीनों क्षेत्रों के अंतर्संबंधों को आप किस प्रकार देखती हैं?

रेखा: मेरी दृष्टि में साहित्य, जेंडर अध्ययन और मीडिया अध्ययन तीनों ही भाषा के माध्यम से एक-दूसरे से गहरे जुड़े क्षेत्र हैं, जैसे एक ही नदी की तीन अलग-अलग धाराएँ, जो

एक-दूसरे को लगातार प्रभावित करती हैं। साहित्य समाज, मनुष्य, संबंधों और अनुभवों की अभिव्यक्ति करता है और इस प्रक्रिया में सामाजिक असमानताओं, वंचनाओं और जेंडर आधारित भेदभाव को भी सामने लाता है।

जेंडर अध्ययन को समझने के लिए साहित्य अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत है, क्योंकि साहित्य में समाज के बदलते स्वरूप, सत्ता-संबंधों और लैंगिक भूमिकाओं का सूक्ष्म प्रतिबिंब दिखाई देता है। दूसरी ओर, मीडिया - चाहे वह विज्ञापन हो, समाचार हो या सोशल मीडिया - अपनी भाषा और छवियों के माध्यम से सामाजिक सोच का निर्माण भी करता है और उसे बदलता भी है।

यह देखना आवश्यक है कि मीडिया की भाषा कितनी जेंडर-संवेदनशील है, और कहाँ वह पुराने पूर्वाग्रहों को पुनः उत्पादन कर रही है। कई बार मीडिया की भाषा साहित्यिक हो जाती है, और कई बार साहित्य मीडिया की तात्कालिकता और दृश्यता से प्रभावित होता है। इस तरह, इन तीनों क्षेत्रों के बीच एक जटिल, पर अत्यंत अर्थपूर्ण संवाद लगातार चलता रहता है, जिसे शोधार्थियों को गंभीरता से पढ़ने की ज़रूरत होती है।

अर्पणा: अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों और वैश्विक साहित्यिक संवादों में भारतीय हिंदी साहित्य की उपस्थिति को आप किस दृष्टि से देखती हैं?

रेखा: पिछले कुछ वर्षों में मैंने यह

स्पष्ट रूप से अनुभव किया है कि अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों और वैश्विक साहित्यिक मंचों पर हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं का साहित्य पहले की अपेक्षा कहीं अधिक दिखाई देने लगा है। अनेक रचनाओं के अनुवाद अंग्रेज़ी सहित विभिन्न भाषाओं में हुए हैं, जिससे भारतीय साहित्य का पाठक-वर्ग वैश्विक स्तर पर विस्तृत हुआ है।

सबसे महत्वपूर्ण यह है कि इंडियन स्टडीज़ और साउथ एशियन स्टडीज़ से जुड़े विभागों और शोध संस्थानों ने भारतीय साहित्य को केंद्र में लाने का गंभीर प्रयास किया है। अब भारतीय साहित्य का अध्ययन केवल परिचयात्मक स्तर पर नहीं, बल्कि गहन आलोचनात्मक और विश्लेषणात्मक दृष्टि से भी हो रहा है। मुझे लगता है कि हमने लंबे समय तक विश्व साहित्य को पढ़ा, उसका अनुवाद किया और उससे बहुत कुछ सीखा है; अब समय है कि हम अपने साहित्य को भी उसी आत्मविश्वास के साथ विश्व-पटल पर रखें। अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन और साहित्यिक संवाद इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, क्योंकि वे हमें अपने देश, अपनी संस्कृति और अपने साहित्य की विशिष्टताओं को वैश्विक समुदाय के सामने रख पाने का अवसर देते हैं।

इन मंचों के माध्यम से हम यह भी समझ पाते हैं कि दुनिया के अन्य साहित्यिक और सांस्कृतिक परिदृश्यों में क्या हो रहा है, और हम उनसे किस प्रकार सृजनात्मक संवाद स्थापित कर सकते हैं। मेरी दृष्टि में

आज हिंदी साहित्य को विश्व स्तर पर पहले से अधिक गंभीरता से पढ़ा और समझा जा रहा है - यह स्थिति हिंदी के लिए उत्साहवर्धक भी है और ज़िम्मेदारियाँ भी बढ़ाती है।

अर्पणा: अंत में, आज के नवोदित शोधार्थियों, अनुवादकों और साहित्यकारों के लिए आपका क्या संदेश है?

रेखा: मैं नवोदित शोधार्थियों, अनुवादकों और साहित्यकारों से सबसे पहले यही कहना चाहूँगी कि वे जिज्ञासा, मौलिकता और बौद्धिक ईमानदारी को अपने काम की आधार-शिला बनाएँ। समय के साथ शोध और अध्ययन की कुछ निश्चित पद्धतियाँ बन जाती हैं, और हम अक्सर उन्हीं के भीतर खुद को सीमित कर लेते हैं, जबकि आज का समय नए प्रश्नों और नई संभावनाओं से भरा हुआ समय है।

एक ओर कृत्रिम बुद्धिमत्ता है, दूसरी ओर इंटरनेट के माध्यम से ज्ञान और सामग्री की उपलब्धता पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सहज हो चुकी है। ऐसे में केवल सूचना एकत्र कर लेना शोध नहीं है; यदि कोई बात कृत्रिम बुद्धिमत्ता या इंटरनेट हमें सहजता से बता सकता है, तो असल शोध उस बिंदु से शुरू होता है जहाँ विश्लेषण, व्याख्या और आलोचनात्मक चिंतन की आवश्यकता उत्पन्न होती है।

मैं चाहूँगी कि युवा शोधार्थी और लेखक आसान विषयों और सुविधाजनक रास्तों की जगह कठिन,

कम चले गए मार्गों का चयन करने का साहस विकसित करें। शोध और सृजन का वास्तविक आनंद इसी जोखिम और खोज की प्रक्रिया में निहित है।

आज दुनिया पहले की अपेक्षा कहीं अधिक आपस में जुड़ी हुई है। ऐसे में हमें अपनी परंपराओं, ज्ञान-व्यवस्थाओं और सांस्कृतिक विरासत को समझते हुए, विश्व स्तर पर चल रहे बौद्धिक विमर्शों से भी निरंतर संवाद बनाए रखना चाहिए। तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में अभी भी बहुत सारी संभावनाएँ हैं, जो हमें अपनी ज्ञान-परंपराओं को नए परिप्रेक्ष्य में देखने और विश्व साहित्य का मूल्यांकन अपनी दृष्टि से करने का अवसर देती हैं।

अंततः, मेरे लिए शोध, अनुवाद और साहित्य-सृजन केवल अकादमिक गतिविधियाँ नहीं, बल्कि ज्ञान, संवेदना और समाज के प्रति उत्तरदायित्व के रूप हैं। यदि हम निष्ठा, परिश्रम और गंभीर चिंतन के साथ काम करें, तो हमारे सामने नई और सार्थक दिशाएँ अवश्य खुलती हैं - जैसे किसी अँधेरे कमरे में धीरे-धीरे खिड़कियाँ खुलती हैं और रोशनी भीतर चली आती है।



एआई से दूर रहने का विकल्प नहीं 'यंत्रबुद्धि' के लेखक बालेन्दु शर्मा दाधीच से विशेष बातचीत

बालेन्दु शर्मा दाधीच

तकनीकविद, लेखक और एल्गो टेक्नोलॉजीज़ के सीईओ



आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस

यंत्रबुद्धि



बालेन्दु शर्मा दाधीच

तकनीकविद, लेखक और एल्गो टेक्नोलॉजीज़ के सीईओ बालेन्दु शर्मा दाधीच की नई पुस्तक 'आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस: यंत्रबुद्धि' इन दिनों चर्चा में है। 514 पृष्ठों और 52 अध्यायों की यह पुस्तक हिंदी में एआई पर लिखी गई अब तक की सर्वाधिक समग्र रचना मानी जा रही है। माइक्रोसॉफ्ट में लंबे समय तक भारतीय भाषाओं के निदेशक रह चुके श्री दाधीच से इस पुस्तक, एआई और हिंदी के भविष्य पर एक विस्तृत बातचीत।

प्रश्न: आपकी यह पुस्तक ऐसे समय में आई है जब ए.आई को लेकर एक साथ बहुत उत्साह भी है और बहुत भय भी। आपने इसे लिखने का निर्णय कब और क्यों लिया?

उत्तर: देखिए, एआई को लेकर जो ऊहापोह है, वह स्वाभाविक है। जब भी कोई बड़ी तकनीक आई, जैसे बिजली आई, कंप्यूटर और इंटरनेट, तो भय और आशंकाएँ ही पहले आई लेकिन धीरे-धीरे मानव सभ्यता ऐसे बदलावों के साथ तालमेल बिठा ही लेती है। बहरहाल, एआई के बारे में जो बात मुझे बेचैन करती थी, वह यह थी कि दुनिया को बदलने जा रही इस प्रौद्योगिकी के बारे में हिंदी में गंभीर तथा समग्र सामग्री का अभाव था। करोड़ों हिंदीभाषी एआई के बारे में या तो अंग्रेज़ी में पढ़ रहे थे, जो सबके लिए संभव नहीं, या फिर सोशल मीडिया पर आधी-अधूरी, अक्सर भ्रामक जानकारी से काम चला रहे थे। यह खाई मुझे हमेशा खलती थी। पुस्तक लिखने का निर्णय दरअसल उसी बेचैनी का परिणाम है।

प्रश्न: पुस्तक का नाम 'यंत्रबुद्धि' है। यह शब्द आपने गढ़ा है। 'कृत्रिम

बुद्धिमत्ता' तो पहले से चल रहा था। इस नए नामकरण की ज़रूरत क्यों पड़ी?

उत्तर: यह केवल नामकरण का प्रश्न नहीं है, यह समझ का प्रश्न है। 'कृत्रिम' शब्द से 'नकली' का भाव आता है - जैसे कोई चीज़ असली नहीं, बनावटी है। लेकिन जो मशीनों में विकसित हुआ है, वह नकली नहीं है। वह डिजिटल लॉजिक, इलेक्ट्रॉनिक हार्डवेयर और यांत्रिक प्रणालियों की वास्तविक उपज है। 'यंत्रबुद्धि' शब्द इस तकनीक की परिभाषा, कार्यप्रणाली, उसकी विशिष्टता और उसकी सीमाओं - सभी को एक साथ व्यक्त करता है। दूसरे, वह हिंदी का शब्द है, कृत्रिम बुद्धिमत्ता की तरह अनूदित नहीं। और एक बात - जब हम किसी चीज़ को सही नाम देते हैं, तो उसे सही ढंग से समझने की नींव पड़ती है। हिंदी में अवधारणाओं का सटीक नामकरण इसीलिए ज़रूरी है।

प्रश्न: आप एआई को लेकर आशावादी हैं या आशंकित?

उत्तर: मैं न पूरी तरह आशावादी हूँ, न पूरी तरह आशंकित, और मुझे लगता

है यही सही स्थिति है। जो लोग कहते हैं कि एआई मानवता का उद्धार करेगी, वे अतिरेक में हैं। जो कहते हैं कि यह सब कुछ बर्बाद कर देगी, वे भी अतिरेक में हैं। सच्चाई यह है कि यह अत्यंत शक्तिशाली उपकरण है और शक्तिशाली उपकरण हमेशा दोधारी होते हैं। चाकू से सब्जी भी कटती है, और कुछ अन्य भी। एआई के साथ भी यही है। असली प्रश्न यह है कि हम इसे किस दिशा में ले जाते हैं, किसके हाथ में देते हैं, और इसके लिए कैसे विनियमन करते हैं।

प्रश्न: पुस्तक में भाषा और एआई के संबंध पर दो पूरे खंड हैं। यह विशेष जोर क्यों?

उत्तर: क्योंकि यह विषय मेरे दिल के सबसे करीब का विषय है। मैंने माइक्रोसॉफ्ट में भारतीय भाषाओं के लिए काम किया। मैं दशकों से देखता आया हूँ कि हमारी भाषाएँ तकनीक की दौड़ में पिछड़ती रही हैं। अब एआई के कारण स्थिति बदल रही है - मशीन अनुवाद बेहतर हुआ है, हिंदी में वॉयस-असिस्टेंट आ रहे हैं, हिंदी कंटेंट पर प्रशिक्षित मॉडल बन रहे हैं। जब तक हिंदीभाषी समाज यह नहीं समझेगा कि एआई और भाषा का रिश्ता क्या है, तब तक वह इस तकनीक का पूरा लाभ नहीं उठा पाएगा इसीलिए मैंने उस हिस्से को विस्तार दिया।

प्रश्न: आपने एआई और रोज़गार के प्रश्न को उठाया है। यह डर बहुत व्यापक है, विशेष रूप से युवाओं में।

आप उन्हें क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर: यह डर समझ में आता है, लेकिन इसे सही परिप्रेक्ष्य में देखना ज़रूरी है। कंप्यूटर आया तो लोग डरे थे। टाइपिस्टों की नौकरी गई, लेकिन सॉफ्टवेयर इंजीनियर, डेटा एनालिस्ट, डिज़ाइनर की एक पूरी नई दुनिया खुल गई। इंटरनेट आया तो दुकानदार डरे। लेकिन ई-कॉमर्स ने लाखों नई नौकरियाँ बनाई। एआई के साथ भी कुछ हद तक ऐसा ही होगा और हो भी रहा है। प्रॉम्प्ट इंजीनियरिंग जैसा पेशा पाए आते हैं क्योंकि वह उस डेटा से सीखती है जो इंसानों ने बनाया है, और इंसानी डेटा में पूर्वाग्रह हैं। तो पहला काम है डेटा को अधिक समावेशी, विविध और पूर्वाग्रह-मुक्त बनाना। दूसरा, पारदर्शिता लाना। एआई के निर्णय कैसे होते हैं, यह समझना ज़रूरी है। और तीसरा ज़रूरी काम है जवाबदेही सुनिश्चित करना। अगर एआई ने कुछ गलत किया तो उसके लिए कौन ज़िम्मेदार है? इन तीनों पर काम हो तो एआई अधिक ज़िम्मेदार बन सकती है। पूरी तरह 'नैतिक' शायद कभी न बने क्योंकि हम खुद भी पूरी तरह नैतिक नहीं हैं।

प्रश्न: आप क्या चाहेंगे कि इस पुस्तक को पढ़ने के बाद पाठक के मानस में क्या बदलाव आए?

उत्तर: बस एक बदलाव 'डर' की जगह 'समझ' आ जाए। एआई को लेकर जो अनिश्चितता है, जो भ्रम है, जो अफ़वाहें हैं वे इसलिए हैं क्योंकि लोग इसे जानते नहीं और इसकी

सतही जानकारी लेकर खुश हो जाते हैं। हम सबके जीवन पर एआई का दीर्घकालीन तथा दूरगामी प्रभाव पड़ने वाला है। यंत्रबुद्धि को समझना और इसमें कौशल प्राप्त करना अब कोई विकल्प नहीं है, बल्कि अनिवार्यता है। और मेरी पुस्तक उस अनिवार्यता को थोड़ा सरल, थोड़ा सुलभ बनाने की कोशिश है।

'आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस: यंत्रबुद्धि' (XplorBook) द्वारा प्रकाशित है।



प्रो. ए. अरविंदाक्षन

हिंदी और मलयालम के विद्वान
arvindsandram@gmail.com



कविता पसंद करती है, नैतिकता की भाषा को। वह अग्रसर होती है, प्रश्नों से जूझते हुए। प्रश्नों से कतराना उसका स्वभाव नहीं है। नीति के पक्ष में वह खड़ी रहती है। इसलिए कविता को अपने अंतरंग प्रतल को नवीकृत करते रहना पड़ता है। यह अंतरंग नवीकरण हम कविता की भाषा में अनुभव कर सकते हैं। जब अज्ञेय ने 'तारसप्तक' की भूमिका में लिखा कि 'सभी कालों के कवियों ने प्रयोग किए हैं' तो उसका आशय भी यही था। कविता की प्रयोगपरकता बाहरी नहीं है। उसकी भाषिकता भी बाहरी नहीं है। कविता की भाषिकता कवि तथा कविता की खोज है जो नैतिकता केंद्रित होती है। जब कवि मनुष्य के लिए संघर्ष अनुभव करता है तो वह सहजतः नैतिक होता है। उसे अपनी पक्षधरता को व्यक्त करना पड़ता है। यह व्यंजना बाह्य मुखरता या मुद्रेबापियों से संभव नहीं है। कविता की यह व्यंजना भाषा की अतिसूक्ष्मता से ही संभव हो पाती है। अपने नीतिबोध से वलयित कविता नैतिक भाषा का सहज रूप से सृजन करती है।

नैतिक भाषा है क्या? जीवन यथार्थ

के अंतर्विरोधों और विडंबनाओं को तराशने के लिए कविता के पास सूक्ष्मदर्शी भाषा की ज़रूरत होती है। विनोदकुमार शुक्ल की कविता के संबंध में अशोक वाजपेयी का यह कथन प्रसंगवश विचारणीय है – “विनोद कुमार शुक्ल की कविता का यथार्थ अब उसकी बनी-बनाई और आज की कविता में चालू अवधारणाओं में समझा जाने वाला नहीं है। उसकी विडंबना अधिक गहरी और कठिन है - उसने अब वाक्यविन्यास भंग करने की अपनी ही युक्ति तज दी है। वह निरलंकार है, पर उसकी त्वचा की कई तहें हैं - उसकी प्रकट आभा के नीचे एक और दीप्ति है। यह हमें आज विनोदकुमार शुक्ल की कविता के अलावा और कौन जताता है कि जहाँ हम रहते हैं, वहीं तिलस्म है?” (पृथ्वी की तरफ घर की तरफ – ‘सब कुछ होना बचा रहेगा’ की भूमिका - अशोक वाजपेयी) विनोदकुमार शुक्ल की कविता की अपनी युक्तियाँ हैं जिनकी कई तहें हैं। कविता की सामान्य अवधारणाओं से भिन्न प्रतल से होकर विनोदकुमार शुक्ल की कविता यात्रा करती नज़र आती है।

नरेश सक्सेना ने संभवतः इसलिए लिखा – “शब्दों को ध्वजा की तरह फहराने वाली कविता यह नहीं है। अनुभवों को हमारे पास छोड़कर स्वयं अदृश्य हो जाने वाली या अपने अद्भुत वाक्य विन्यास की मौलिकता से स्वयं का दर्जा प्राप्त कर लेने वाली भाषा इन कविताओं की विशेषता है। इनमें है, वह दृष्टि जो समय को झरती हुई पत्तियों की जगह फूटती हुई कोंपलों में देखने का हौसला रखती है।” भाषा की यह सन्निहित विनोदकुमार शुक्ल की नैतिक-भाषा से उद्भूत ऊर्जा शक्ति का प्रतिफल है। उनकी भाषा का नीतिबोध भाव की तरह छेदता हुआ आगे बढ़ता है। ‘तथा’ कविता का नैतिक बोध इसी से संबंधित है –

राशन लेने वालों को दूकानदार ने
धीरे से माँ-बहन की गाली दी
और चिल्लाकर लाइन लगाने को
कहा
तथा माँ-बहन की गाली से जन्मा
वह लड़का मुझे दिखा
पिता-भाई की गाली से जन्मी
वह लड़की मुझे दिखा
तथा दोनों के पास उनका या किसी
का राशन कार्ड था

तथा लाउड स्पीकर से
 “भाइयों और बहनों संघर्ष हमारा
 नारा है”
 चिल्लाता एक जुलूस गया
 तथा माँ-बहन की गाली से जन्मे
 लड़के ने
 लाइन से बाहर आकर
 जुलूस वालों को माँ-बहन की गाली
 दी
 तथा बहुत लंबी लाइन देखकर
 लाइन से बाहर ही खड़ा रहा
 और केवल तथा यह राजनीतिक
 समाज नहीं।

विनोद कुमार की इस कविता को सरलीकृत करके विश्लेषित करना उनकी कविता के प्रति घोर अन्याय होगा। हिंदी में ‘तथा’ का मुख्य अर्थ ‘और’ या ‘एवं’ होता है। यह एक संयोजक शब्द है जिसका उपयोग दो शब्दों या वाक्यों को जोड़ने के लिए किया जाता है। ‘तथा’ शब्द का सामान्य अर्थ विनोदकुमार की कविता में पूरी तरह से विलीन होता है और वह कई-कई सत्यों और अर्द्ध सत्यों से विनोदपूर्ण संयोजन में लग जाता है। यह विनोद प्रियता उनकी ‘ब्लैक ह्यूमर’ से भी संबंधित है। कविता का एकमात्र शब्द-तथा-बहुत कुछ को संयोजित करता जाता है। इस कारण से ही विनोद कुमार शुक्ल ने अपनी एक अन्य कविता ‘अपने हिस्से में लोग आकाश देखते हैं’ में ऐसी पंक्तियाँ लिखीं -

जो सब की घड़ी में बज रहा है
 वह सब के हिस्से का समय नहीं है
 इस समय

उन्होंने यह भी लिखा कि ‘घड़ी देखना समय देखना नहीं है। अक्सर हम यथार्थ की दृश्यता से ही वशीभूत होते हैं और तदनुसार प्रतिकृत होते हैं। विनोदकुमार शुक्ल दृश्यता को पूरी तरह से उलट देते हैं और उन्हें अपनी दृश्यता मिलने लगती है। ‘तथा’ कविता की दृश्यता में एक लड़का और एक लड़की है और दोनों माँ-बहन की गाली जन्मे बच्चे हैं। इसी की तथता के जकटापोसिशन में जुलूस का नारा है - ‘भाइयों और बहनों संघर्ष हमारा नारा है।’ संघर्ष के सतहीपन को कवि ने वास्तविक संघर्ष से सम्मुख खड़ा किया है। जब लड़का माँ-बहन की गाली जुलूस को देता है तो भाषा का नैतिक वृत्त घना हो उठता है। श्याम बेनेगल की फिल्म ‘अंकुर’ के अंतिम दृश्य में भी ऐसी ही एक घटना है। वह घटना फिल्म में विकसित सामाजिक अनीति को संकेद्वित करती है। कविता की भाषा की यह नैतिक दृष्टि समय को केंद्र में लाने की प्रवृत्ति से जुड़ती है। दृश्यता की हास्यास्पदता को घोर अनुभव में परिणत करके कवि ने अपनी भाषा की नैतिकता को नैतिकता की सामान्यता से मुक्त करके प्रस्तुत किया है। यही कवि-कर्म की आभा है जिसके भीतर यथार्थ के कई सौरमंडल दृश्यवत होते हैं।

समकालीन कविता में भाषा परावलंबी नहीं है। वह स्वयं सृजित होती है। कविता की नैतिक दृष्टि अपनी भाषा रचती है। भाषा ही नहीं बल्कि एक भाषा-घर भी वह रचती है। दरअसल यह भाषा-घर कविता में

भाषा-संसार बनकर अवतरित होता है जिसमें जीवनानुभवों के अनेक गुहा-गह्वर मिलने लगते हैं। भाषा की नैतिकता कविता की नैतिकता ही है और वह समय की अनैतिकता के पूरे वृत्त को अनावृत करती है।

केदारनाथ सिंह की कविता है ‘बुद्ध की मुस्कान’ जो पोखरण में हुए बम विस्फोट से संबंधित है। इस कविता में स्वयं कवि केदारनाथ सिंह है और उनकी मुलाकात एक बुजुर्ग कवि से होती है। बुजुर्ग कवि पोखरण के बम-विस्फोट से परेशान है। बम का विस्फोटित होना मन को उल्लसित करने वाला कार्य तो नहीं है। उसमें नीति का निषेध है। युद्ध की रणनीति के संदर्भ में वह महत्वपूर्ण हो सकता है। मानवीयता की सदायशयता के संदर्भ में वह कुटिलता और ध्वंस का पर्याय है। इस अर्थ में ही यह कविता नीति के निषेध को केंद्र में ला रही है। नैतिकता की भाषा को कूटनीति की भाषा में तब्दील करने की साजिश से बुजुर्ग कवि सहमत नहीं है। नीति का सीधा संबंध मानवीयता से है और कूटनीति की भाषा का संबंध ध्वंस से हैं- अचानक वह रुका

उसने मेरी तरफ देखा

और धीरे से बोला -

सुनो, मेरी समस्या यह है

कि वह कौन-सा नियम है भाषा का

जिससे पोखरण में होने वाला बम-विस्फोट

चुप के से बन गया था बुद्ध की मुस्कान

बुजुर्ग कवि का आतंकित महसूस करना सहज है क्योंकि उससे अनैतिकता बर्दाश्त नहीं हो रही है। यही नहीं कि एक घोर अमानवीय घटना को करुणा के संदेशवाहक बुद्ध के नाम पर प्रचारित किया जा रहा है। अनैतिकता के

दोतरफा अन्याय को कविता में दर्ज किया गया है। कविता में एक दृश्य भी अनावृत है और वह एक तितली का दीवार से टकराने से संबंधित है। बुजुर्ग कवि के अनुसार तितली के परों का हिलाना और दीवार से टकराना मामूली दृश्य नहीं है। वह सौंदर्य का विस्फोट है जिससे किसी का नुकसान नहीं होता। वह सौंदर्यमय दृश्य भविष्य के सकारात्मक सृजन का प्रतीक है। नकारात्मक दृश्य के विरुद्ध सकारात्मकता का विस्फोट है -

कि अचानक खुशी से चीख उठा वह -
वो देखो ... वो देखी
उन परों का हिलना भी
एक छोटा-सा विस्फोट है
दुनिया के सारे विस्फोटों के खिलाफ

अपनी नैतिकता के उल्लास से वशीभूत बुजुर्ग कवि को उसके अकेलेपन की पवित्र गरिमा के बृहत्तर परिवेश में छोड़कर कवि केदारनाथ सिंह चले आते हैं। कविता में दर्ज अंतर्विरोध को - नैतिकता की भाषा से तराशते हुए - 'ब्लैक ह्यूमर' के साथ कवि प्रस्तुत कर रहे हैं -

पाठको, मुझे क्षमा करना
कि ज़िक्र अणु बम का
और मैं एक तितली के पक्ष में
बकवास कर रहा हूँ।

‘एक तितली के पक्ष में बकवास कर रहा हूँ’ जैसी पंक्ति कविता की कई परतों को खोल देती है। विषय की गंभीरता और अगंभीरता के बीच यह पंक्ति आवाजही कर रही है और नैतिकता तथा अनैतिकता के बीच

भी। इस तरह कविता गंभीरता अर्जित करती है।

कविता में नैतिकता की भाषा मुखर स्थिति में नहीं रहती। उसकी संगुफित अवस्था ही प्रीतिकर है। इसके लिए समकालीन कविता में अनेकविध उदाहरण मिलते हैं। कविता का इतिहास मनुष्य के इतिहास से भिन्न नहीं है। उन दोनों इतिहासों में नैतिकता का परोक्ष इतिहास भी संग्रथित है जिसको कविता की भाषा के रोए-रेशे में अनुभव किया जा सकता है।



20/17

लेख

देवयानी - एक देवदासी की कहानी



डॉ. कुसुम पन्त जोशी

शोधकर्ता, सामाजिक इतिहासकार,
शौकिया चित्रकार

kusumpantjoshi@gmail.com

यदि आप ब्रिटेन और भारत के सांस्कृतिक संबंधों से परिचित हैं, तो आपने ज़रूर सुना या पढ़ा होगा कि वर्ष 1838 में दक्षिण भारत में स्थित पांडिचेरी के निकट तिरुवनंतपुरम शहर के पेरुमाल मंदिर की पाँच देवदासियाँ और तीन पुरुषों को इंग्लैंड के अडैल्फी थिएटर के मैनेजर, फ्रेडरिक बेट्स ने 5000 गिनी की फ़ीस तय करके फ़्रांस से यूके आमंत्रित किया था, जहाँ पहुँचने के बाद उन्होंने करीब 100 बार अपने संगीत व नृत्य के कार्यक्रम लंदन में और यूके के कुछ दूसरे शहरों में प्रस्तुत करके, धूम मचा दी थी! हाथ से बनाई गई उनकी अनेक तस्वीरों से सुसज्जित उन पर रोज़ कई लेख अंग्रेज़ी अखबारों में प्रकाशित हुए जो आज भी ब्रिटिश लाइब्रेरी के पुराने अखबारों के संग्रह में या ऑनलाइन जाकर पढ़े जा सकते हैं।

किन्तु आप में से शायद ही किसी ने

एक दूसरी देवदासी की कथा सुनी होगी जो 1769 में अकेली फ्रांस आई थी।

जी हाँ, 1838 से 79 वर्ष पूर्व, केवल 6 साल की उम्र में वह फ्रांस आ पहुँची थी! यह कैसे हुआ? लीजिए सुनिए! 1769 में फ्रांस का एक नाविक (जिसका नाम हम डोमिनिक रख लेते हैं), भारत से समुद्री मार्ग द्वारा अपने देश के लिए रवाना होने जा ही रहा था कि अचानक उसके हाथ तीन लड़कियाँ लग गईं जिनको उसने कैद कर लिया और उन्हें अपने साथ फ्रांस ले जाने की ठानी। बिना विलम्ब के वह उन्हें ज़ोर-जबरदस्ती से अपने जहाज़ में चढ़ा कर फ्रांस के लिए रवाना हो गया। ये लड़कियाँ बहनें थीं - सबसे बड़ी 16 वर्ष की, दूसरी 15 की और तीसरी मात्र 6 वर्ष की थी। वे साधारण लड़कियाँ नहीं थीं; तीनों बहनें तिरुमाला मंदिर की देवदासियाँ थीं! अनजान विदेशी द्वारा अपहृत होने और अपनी स्वतंत्रता खो देने और अपने भविष्य के बारे में अत्यंत भयभीत व व्यथित होने के अतिरिक्त वे लंबी समुद्री यात्रा के अनुभव से पूरी तरह अपरिचित थीं। तिस पर बोलचाल की किसी भाषा की नामौजूदगी के कारण, वे अपनी लम्बी और कठिन समुद्री यात्रा के दौरान न तो डोमिनिक से कुछ पूछ सकती थीं, न ही कुछ बता सकती थीं। ऐसी दुखद व भयावह परिस्थिति में, अपनी पसंद का खाना पीना तक न उपलब्ध हो पाने के कारण, वे बेहद कमज़ोर हो गई थीं। नादान बहनें इतना तक नहीं जानती थीं कि वे



फ्रांस से यूके आमंत्रित पाँच देवदासियाँ और तीन पुरुष (1838)

कहाँ जा रही हैं, जहाँ जा रही हैं वहाँ वे कितने दिनों बाद पहुँचेंगी और जहाँ जा रही हैं, वहाँ पहुँचने के बाद उनका क्या होगा। सबसे बड़ी बहन को अपनी छोटी बहनों की बहुत अधिक चिंता थी। दुर्भाग्यवश, एक दिन की बीमारी के बाद ही उसके दिल की धड़कन बन्द हो गई और वो भगवान को प्यारी हो गई। उसे मरा हुआ देख कर दूसरी बहन दुःख से पागल हो गई। कुछ ही घंटों के उपरान्त, उसने अपनी प्यारी बहन का मृत शरीर उठाया, उसे गले से लगाया और उसे अपनी बाँहों में लेकर समुद्र में कूद गई!

दो बहनों की ऐसी दुखद परिस्थिति में दुनिया छोड़कर चले जाने से, उनकी सबसे छोटी बहन देवयानी संभवतः व्याकुल हो जाती और जीवित न रह पाती किन्तु वह बड़ी नादान, नासमझ और चुलबुली थी और इसी कारण उसका मानसिक संतुलन और स्वास्थ्य बना रहा। कुछ सप्ताह बाद वह अपने फ्रांसीसी अपहरणकर्ता के साथ सही सलामत फ्रांस पहुँच गई।

भारतीय देवदासियों को डोमिनिक फ्रांस के उस समय के शासक, लुई XV की मशहूर रखैल, को भेंट करना चाहता था। कुछ समय पूर्व किसी ने मदाम दुबारी को एक अफ्रीकी लड़का भेंट किया था, जिसे खुश होकर उन्होंने अपना लिया था। उसे उन्होंने पहले जैमोर का नाम दिया था और उसे ईसाई बनाने के बाद लुई बैनोय का नया नाम देकर अपना सहचर बना लिया था। जैमोर के बदले में, उन्होंने भेंट देने वाले व्यक्ति को काफ़ी बड़ी रकम इनाम के तौर पर दी थी। निःसंदेह इसी तरह की मोटी रकम पाने के लालच ने डोमिनिक को भी प्रेरित किया था।



मदाम दुबारी



ज़ैमोर (Zamor)



मदाम लुई द मारी

पेरिस पहुँचने के कुछ ही समय बाद, डोमिनिक ने 6-वर्षीय देवयानी को फ़्रांस के राजमहल में मदाम दुबारी के सम्मुख प्रस्तुत किया। बजाय यह कहने के कि वह मंदिर की देवदासी थी (जो यूरोप में 'बायादरी' कहलाती थीं), डोमिनिक ने उसे यह कह कर पेश किया कि वो एक भारतीय महाराजा की बेटी थी। लाल रंग के सुन्दर रेशमी कपड़े, सुनहरे आभूषण से अपने घुँघराले बालों को सुसज्जित और नाक में चमकते हुए हीरे पहने देवयानी ने दरबार में गीत गाए और, अपनी बहनों की तरह सुन्दर अभिनय और नृत्य प्रस्तुत करने की पूरी चेष्टा की। फिर अचानक, भावावेश में आकर, उसने अपने नृत्य और गायन को रोक दिया, और एक असहाय बच्ची की तरह फूट फूटकर रोने लगी! उसे दुखी देखकर, वहाँ उपस्थित सभी महानुभावों ने प्रेमपूर्वक उसे पुचकारा और सात्वना देने की कोशिश की, जिसके फलस्वरूप देवयानी का रुदन थम गया और वो शांत हो गई।

अब तक शाम ढल चुकी थी; राजसभा भंग होने का समय निकट था। डोमिनिक महाराजा लुई से अच्छी खासी रकम भी प्राप्त कर चुका था किन्तु मदाम दुबारी ने अपनी

मंशा ज़ाहिर कर दी कि वह देवयानी को अपनी छत्रछाया में न ले सकेंगी क्योंकि ऐसा करने से उनके सहचर बैनोय को ईर्ष्या हो जाएगी। इसलिए डोमिनिक ने देवयानी को अपने साथ चलने का इशारा किया। वहाँ से बाहर निकलने के बजाय देवयानी ने सभा में उपस्थित एक राजकुमारी के लम्बे गाउन के एक कोने को पकड़ लिया, जो देवयानी की प्रस्तुति के बाद उसमें रुचि ले रही थी और उसे प्यार भरी नज़रों से सराहती रही थी। लाख मनाने पर भी वह महल को न छोड़ने की ज़िद पर अड़ी रही। अंततः राजकुमारी का कोमल हृदय पसीज गया और वह देवयानी को स्वीकार करने के लिए तैयार हो गई।



फ़्रांस की राजकुमारी मदाम लुई द मारी ने देवयानी को बहुत प्रेमपूर्वक रखा और उसके फ्रेंच भाषा सीखने का भी प्रबन्ध किया। कड़ी मेहनत, लगन और अपनी तीव्र बुद्धि का उपयोग कर, देवयानी कुछ ही महीनों

के भीतर फ्रेंच भाषा में बोलना, लिखना व पढ़ना सब सीख गई। राजकुमारी को बहुत प्रसन्नता और गर्व की अनुभूति हुई। ईसाई धर्म से परिचित करवाए जाने के एक वर्ष के बाद देवयानी ने ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया; उसका बैप्टिस्म यानी ईसाई नामकरण पेरिस के आर्चबिशप द्वारा किया गया, उसका नाम लुईस रखा गया। देवयानी ने राजकुमारी को हर प्रकार की सहायता देना आरंभ कर दिया और शीघ्र ही वह राजकुमारी की सैक्रेटरी, उनका हर भेद जानने वाली मददगार, और उनकी पक्की सहयोगी बन गई।

कुछ वर्ष बाद, राजकुमारी ने घोषणा की कि वह एक नन (ईसाई जोगन) बन कर कारमेलाइट कॉन्वेंट में अपना बाक़ी जीवन एकांत में व्यतीत करना चाहती हैं। यह सुनकर देवयानी यानी लुईस ने भी उनके साथ वैसा ही जीवन व्यतीत करने का निर्णय लिया। 17 अप्रैल 1770 को राजमहल की प्रतिष्ठित हस्तियाँ सेंट डेनिस के कारमेलाइट कॉन्वेंट में एकत्रित हुईं, जिनके सामने फ़्रांसीसी राजकुमारी और भारत की पूर्व देवदासी को अग़ल-बग़ल खड़ा कर फ़्रांस की भावी महारानी मारी आंतोने के करकमलों से उनके मुँह पर नोविशिएट का पर्दा पहनाए जाने की प्रथा की पूर्ति हुई। एक वर्ष के बाद ही दोनों को कारमिलाइट समूह की नन बनाए जाने का श्रेय पाने पर, उन्हें काले रंग का घूँघट पहनाया गया। तत्पश्चात, दोनों एक कठिन राह पर

चल पड़ीं जिसमें उनको नंगे पांव चलना पड़ता था, रात भर पूजा-पाठ करना और अनेक कठिन व्रत रखने ज़रूरी थे। इस तरह, फ्रांस के राजमहल में शानोशौकत से रहने वाली राजकुमारी और भारत से लाई गई भगवान को अर्पित एक देवदासी ने सब कुछ त्यागते हुए 11 वर्ष काट दिए।

कमज़ोरी के कारण राजकुमारी ने दम तोड़ दिया, व्यथित देवयानी स्वयं बेहद कमज़ोर हो चुकी थी। कारमेलाइट संस्था के संचालकों ने देवयानी को ऐसी जगह स्थानांतरित करने की सोची जहाँ वह अधिक आसानी से जीवन बिता सके। उसे सेंट जर्मेन ले जाया गया जहाँ उसे एक दयालु और सहानुभूति से भरपूर उच्च कुल की फ्रांसीसी महिला का सहवास मिला। यहाँ उसकी एक अफ्रीकी लड़की से भी मुलाक़ात हुई जो अपनी सामाजिक परिस्थितियों से बहुत अशान्त थी। देवयानी ने उसे सच्चे मित्र की तरह सहारा दिया पर कुछ समय बाद जब उसकी भी मृत्यु हो गई तो देवयानी एक बार फिर व्यथित हो गई। शांति और सम्मान के साथ रहते, देवयानी ने साधारण किन्तु आरामदेह जीवन व्यतीत करने लायक प्रबंध कर लिया था।

1789 में फ्रांसीसी क्रांति का आरंभ हुआ; प्रजा ने राजपरिवार के कई सदस्यों को गिलोटीन पर चढ़ा दिया। देवयानी ने किसी तरह अपनी जान बचाई और 1808 तक जीवित रही। उसने सदा सभ्य और इज़्ज़तदार महिला के रूप में अपना जीवन

बिताया। 1838 में देवदासियों के एक नये समूह को यूरोप में आमंत्रित किया गया; जिसने फ्रांस, यूके और ऑस्ट्रिया आदि देशों की यात्रा की; तब तक लोग देवयानी को पूरी तरह भूल चुके थे। 1838 में ही लंदन और दूसरे कुछ शहरों में नृत्य करने के लिए आमंत्रित देवदासियों में से एक वृद्ध महिला ने इंग्लैंड के एक लेखक से देवयानी की चर्चा की तो न उस लेखक और न ही वहाँ उपस्थित किसी दर्शक को उसकी याद थी!



ललित निबंध चार पैसे: सुरक्षा और ज़िम्मेदारी का प्रतीक



गोवर्द्धन दास बिन्नाणी 'राजा बाबू'

सेवानिवृत्त लेखाकार
gd_binani@yahoo.com

हमारे समय में 11वीं में बोर्ड की परीक्षा के बाद में ही कालेज दाखिला होता था इसलिये नवीं में ही विज्ञान, वाणिज्य या कला संकाय में से एक पर सोच विचार कर निर्णय करना आवश्यक होता था ताकि तीन साल बाद यानि ग्यारहवीं के बोर्ड परीक्षा बाद स्नातक वाली पढ़ाई उसी अनुरूप से पूरी की जा सके। सो मेरे प्रधानाध्यापक जी ने आठवीं में गणित वाले अच्छे परिणामस्वरूप, मेरे बड़े भाई को समझा कर विज्ञान संकाय में मेरा दाखिला करवाने का आवेदन ले लिया। दस ग्यारह माह पश्चात एक दिन मेरी विज्ञान वाली पुस्तकों को देख पिताजी के ध्यान में आया कि मैंने तो विज्ञान संकाय ले रखा है, सो विफर पड़े और कह दिया कि विज्ञान अपने काम की नहीं; वाणिज्य संकाय से पढ़ाई करनी है। ध्यान रखना चार पैसे जब पास में होंगे तभी यह दुनिया तुम्हारी कद्र करेगी। उस समय तो मैं यही समझा

कि पढ़ाई के साथ कमाने का समझा रहे हैं।

लेकिन बाद में जब मैंने अपने परिवार के सम्बन्धियों के यहाँ भी बड़े बुजुर्गों को डाँट कर अपने से छोटों को कहते सुना कि चार पैसे कमाने की अक्ल नहीं है; देर तक सोने में मन तो लगता है न? तब चार पैसा वाली बात सुन बड़ा ही आश्चर्य हुआ और यह चार पैसा वाली गुत्थी को समझने की ललक जागी।

इसी बीच रास्ता पार करने के लिये जब सड़क पर खड़ा था तभी बगल में खड़े दो दोस्त आपस में बात कर रहे थे जहाँ एक कह रहा था, "सारी जिंदगी निकली जा रही है लेकिन अभी तक चार पैसे नहीं जुटा पाया हूँ।" जबाब में दूसरे ने कहा, "हमने तो लगा दी पूरी ताकत चार पैसा कमाने में।" यह वार्तालाप जब बारम्बार कान में पड़ा तब अपने घर पर पढ़ाने वाले शिक्षक से इस को समझाने का आग्रह किया। उन्होंने बताया कि कहावतें प्रायः सांकेतिक रूप में होती हैं यानि वो वाक्यांश जो 'जीवन के दीर्घकाल के अनुभवों को छोटे वाक्य में कह कर आपको समझा देती हैं। 'चार' शब्द से हमारे यहाँ अनेक मुहावरे बहुत ही उपयोग में लाए जाते हैं जैसे 'चार पैसे कमाओगे, तब समझ में आयेगा' के अलावा 'चार लोग क्या कहेंगे', 'चार दिन की चांदनी फिर अंधेरी रात', 'चार सौ बीसी करना' और 'चार कंधों पर जाना' जो जीवन के अंतिम सत्य यानी मृत्यु से जुड़ा हुआ है।

‘पैसा को कुँए में डालना’ यानि अपने परिवार के पेट रूपी कुँए में डालना होता है अर्थात अपना तथा अपने परिवार पत्नी, बच्चों का भरण-पोषण करना। ‘दूसरे पैसे से पिछला कर्ज उतारना’ अर्थात माता पिता द्वारा किए गए हमारे पालन-पोषण का कर्ज उतारने के लिए यानि उनकी सेवा के लिए दूसरा पैसा है। ‘तीसरे पैसे को आगे कर्ज देना’ यानि अपनी संतान को पढ़ा लिखा कर योग्य बनाना ताकि वे वृद्धावस्था में आपका ख्याल रख सकें। ‘चौथा पैसा को संभाल’ या ‘आड़े वक्त के लिए जमा करना’ अर्थात शुभ कार्य करने के लिए दान, संत सेवा, असहायों की सहायता करने के लिए, यानि निष्काम सेवा करना, क्योंकि हमारे द्वारा किए गये इन्हीं शुभ कर्मों का फल हमें मिलेगा।

निष्कर्ष में, ‘उपर्युक्त वर्णित कार्यों को सही ढंग से पूर्ण करने के लिये हमें हमारे धन को चार हिस्सों में विभाजित करना आवश्यक है। उल्लेखित तथ्यों को ही संक्षिप्त में लोकोक्ति के रूप में ‘चार पैसे कमाओगे, तब समझ में आयेगा’ कह कर सामने वाले को चार पैसों का गणित समझा दिया जाता है।



ललित निबंध अथ धक्का कथा



डॉ. मुदिता पचौरी

सीनियर फैकल्टी, डेली कॉलेज, इंदौर
Mudita Kapil
pachauri24@gmail.com

‘धक्का’ बड़ा महत्त्वपूर्ण शब्द और घटना है। इसके शाब्दिक अर्थ की बात करें तो बलपूर्वक हटाना, ठेलना, और कभी-कभी मदद या सहायता के अर्थ में इसका उपयोग देखा गया है। यह आकर्षण या खिंचाव का विलोम शब्द है। मसलन, कोई वाहन ठीक से नहीं चल रहा हो तो चार-छह लोग मिलकर धक्का लगाते हैं, फिर वह चल पड़ता है। सब्जी या जरूरत की छोटी-मोटी चीजों को बेचने वालों को जीवन-यापन के लिए ठेला ठेलना पड़ता है, प्रतिदिन धक्का लगाने पर ही उनके जीवन रूपी गाड़ी आगे चल पाती है। पुरी के जगन्नाथ मंदिर में दर्शन की कतार में आपको चलना नहीं पड़ता, धक्के ही आपको दर्शन करवा कर बाहर निकाल देते हैं। इसी तरह मुंबई की लोकल ट्रेनों में भी धक्का ही आपको चढ़ाता है और धक्का ही आपको उतार कर प्लेटफार्म पर खड़ा कर देता है। स्कूल-कॉलेज में कई विद्यार्थी ठीक से

पढ़ाई नहीं करते जिन्हें ट्यूशन रूपी धक्के से अगली कक्षा में भेजा जाता है। राजनेता चुनाव में सफल होने के लिए, जनता के दिल में अपनी जगह बनाने के लिए बहुत धक्के खाते हैं। कुछ नेता पार्टी लाइन से अलग चलने का दुस्साहस करते हैं, तो वह पार्टी द्वारा धकिया दिए जाते हैं। यदि वे स्वयं समर्थ होते हैं, तो वह पार्टी को धक्का मार कर अलग हो जाते हैं। कई सफल फिल्मी कलाकार बताते हैं कि अपनी असफलता के दौर में उन्होंने अनेक स्टूडियो और निर्देशकों से धक्के खाए हैं। किसी जमाने में नई फिल्म रिलीज होने पर 'फर्स्ट डे फर्स्ट शो' में भी टिकट काउंटर पर धक्के चलते थे। अब मल्टीप्लेक्स और प्री-बुकिंग ने लोगों से यह आनंद भी छीन लिया है। चिकित्सक कहते हैं कि सामान्य प्रसव में माँ द्वारा लगाए गए धक्के से ही नवजात संसार में आता है।

यदि किसी खेल में विरोधी ने आपको धक्का दे दिया या फिर कहीं मारपीट में आप धकियाए गए तो आप तकलीफ महसूस करेंगे। ईश्वर न करें आपकी पत्नी या प्रेमिका ने आपको पहाड़ की चोटी से धक्का दे दिया, तो स्थिति बहुत गंभीर हो सकती है। मानसिक धक्के मनुष्य को ज्यादा परेशान करते हैं। ये आम तौर पर किसी व्यक्ति, समूह या संस्था के अनपेक्षित व्यवहार से लग जाते हैं। इसमें कभी-कभी धक्का देने वाले को यह पता भी नहीं चलता कि उसने धक्का दिया है। जिसे मिला है, वह परेशान होता रहता है। ताने मारना,

नीचा दिखाना बेइज्जत करना इसके मुख्य तत्त्व माने गए हैं। आर्थिक धक्का भी इसी में शामिल है। व्यापार में नुकसान या बिजनेस पार्टनर द्वारा मिला धोखा किसी भी व्यक्ति को पर्याप्त रूप से दुःखी और हताश कर देता है। बुजुर्ग माता-पिता को बहलाकर जब आपके रिश्तेदार सारी जायदाद बैंक की एफ.डी., सोना चाँदी आदि खुद के नाम करा लेते हैं, तो यह आपके लिए आर्थिक और भावनात्मक धक्के का 'कॉम्बो' बन जाता है।

धक्का देना भारतीय संस्कृति की पुरानी कला प्रतीत होती है। धक्कों के इतिहास पर चर्चा करें, तो राजा दशरथ से कैकेई द्वारा माँगे गए दोनों वरदान उनके लिए गहरे भावनात्मक धक्के साबित हुए, जिससे उनका प्राणांत हो गया। राजकुमार सिद्धार्थ को गौतम बुद्ध बनाने वाला दृश्य शक्तिशाली मानसिक धक्का था। महाभारत में 'सीदन्ति मम गात्राणि मुखम् च परिशुष्यति' से अर्जुन को जो धक्का लगा, उसी के कारण ही विश्व को गीता जैसा दुर्लभ ग्रंथ मिला। पेड़ से सेब गिरने से लगे धक्के से ही न्यूटन ने ख्याति प्राप्त की। यही नहीं, राजा राममोहन राय को लगे धक्के से ही 1829 में कानून बना और सती प्रथा बंद हुई। ट्रेन, बस, कार और हवाई जहाज में यात्रा करने पर थोड़े धक्के तो लगते ही हैं। ईश्वर न करे, कभी सड़क पर चलते समय आपको कोई आगे या पीछे से धक्का लगा दे, तो उसकी तीव्रता से यह तय होगा कि आपकी हड्डी टूटेगी

या आप सस्ते में छूट जाएँगे।

धक्के कभी दुःखी करते हैं, कभी चोट पहुँचाते हैं, कभी जगाते हैं, कभी सिखाते हैं, कभी तोड़ते हैं, कभी जोड़ते हैं, कभी प्रेरणा देते हैं। यानी कुछ धक्के सकारात्मक हैं और कुछ बिल्कुल नकारात्मक। कुल मिलाकर अगर आप 'बड़े भाग मानस तन पावा' की श्रेणी में आते हैं तो धक्के जीवन भर आपको अवश्य ही प्रभावित करते रहेंगे।



व्यक्तित्व निर्माण: प्राचीन ज्ञान और आधुनिक चुनौतियाँ

डॉ. ममता जैन पुणे

mamta13in@gmail.com



मानव जीवन का वास्तविक सौंदर्य उसके व्यक्तित्व में निहित होता है। व्यक्तित्व केवल बाह्य स्वरूप, वेशभूषा अथवा बोलचाल का नाम नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के विचारों, मूल्यों, आचरण, व्यवहार, निर्णय क्षमता, भावनात्मक संतुलन और सामाजिक उत्तरदायित्व का समन्वित रूप है। आज का युग अभूतपूर्व वैज्ञानिक प्रगति, तकनीकी विकास और वैश्विक संपर्क का युग है। एक ओर मनुष्य के पास सुविधाओं का अपार विस्तार है, तो दूसरी ओर तनाव, अकेलापन, नैतिक पतन, असहिष्णुता, प्रतिस्पर्धा और पहचान का संकट भी बढ़ रहा है। ऐसे समय में व्यक्तित्व निर्माण का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है।

भारतीय चिंतन परंपरा ने व्यक्तित्व निर्माण को केवल सामाजिक सफलता का साधन नहीं माना, बल्कि आत्मविकास और आत्मोत्कर्ष की प्रक्रिया के रूप में देखा है। वेद, उपनिषद, भगवद्गीता, बौद्ध साहित्य, जैन आगम और प्राकृत साहित्य में ऐसे अनेक सिद्धांत उपलब्ध हैं जो आज भी व्यक्तित्व विकास के लिए प्रासंगिक हैं। आवश्यकता केवल इस

बात की है कि इन प्राचीन मूल्यों को आधुनिक चुनौतियों के संदर्भ में पुनर्परिभाषित किया जाए।

व्यक्तित्व निर्माण की अवधारणा

व्यक्तित्व शब्द का अर्थ व्यक्ति की उन समस्त विशेषताओं से है जो उसे दूसरों से भिन्न बनाती हैं। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहार, अभिवृत्तियों, भावनाओं और मानसिक संरचनाओं का समग्र रूप है। भारतीय दृष्टि इस पर व्यापक व्यापक रूप से विचार करती है। यहाँ व्यक्तित्व का आधार चरित्र, आत्मसंयम, सदाचार और आत्मबोध को माना गया है। भारतीय दर्शन में आदर्श व्यक्तित्व वह है जो ज्ञान, विवेक, करुणा, संयम और कर्तव्यनिष्ठा से युक्त हो। इस दृष्टि से व्यक्तित्व निर्माण केवल कौशल विकास नहीं, बल्कि जीवन मूल्यों का विकास है।

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में व्यक्तित्व निर्माण

1. आत्मज्ञान और आत्मचिंतन

उपनिषदों में "आत्मानं विद्धि" अर्थात् स्वयं को जानो का संदेश दिया गया है। व्यक्तित्व निर्माण की प्रथम सीढ़ी

आत्मपरिचय है। जब व्यक्ति अपनी शक्तियों, सीमाओं, इच्छाओं और उद्देश्यों को पहचानता है, तभी वह सही दिशा में विकास कर सकता है। आज के समय में अधिकांश लोग बाहरी उपलब्धियों के पीछे दौड़ते हैं, किंतु स्वयं को समझने का प्रयास नहीं करते। परिणामस्वरूप जीवन में असंतोष और भ्रम उत्पन्न होता है।

2. भगवद्गीता और कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व

भगवद्गीता में कर्मयोग का सिद्धांत व्यक्तित्व निर्माण का महत्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करता है। गीता का संदेश है कि व्यक्ति को फल की चिंता किए बिना अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। यह दृष्टिकोण व्यक्ति में आत्मविश्वास, धैर्य और कार्यनिष्ठा विकसित करता है। आधुनिक कार्यस्थलों में तनाव का एक बड़ा कारण परिणामों के प्रति अत्यधिक आसक्ति है। गीता का कर्मयोग इस समस्या का प्रभावी समाधान प्रस्तुत करता है।

3. जैन दर्शन और व्यक्तित्व निर्माण

जैन दर्शन व्यक्तित्व विकास के क्षेत्र

में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान देता है। जैन आचार्यों ने सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र को जीवन की सफलता का आधार माना है।

अहिंसा व्यक्ति में करुणा और संवेदनशीलता विकसित करती है। अनेकांतवाद सहिष्णुता, संवाद और व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है। अपरिग्रह उपभोक्तावादी प्रवृत्ति पर नियंत्रण स्थापित करता है।

संयम व्यक्ति को आत्मनियंत्रण और संतुलन की शिक्षा देता है।

आज जब समाज वैचारिक कट्टरता, हिंसा और भौतिकवाद से जूझ रहा है, तब जैन दर्शन के ये सिद्धांत अत्यंत प्रासंगिक दिखाई देते हैं।

4. बौद्ध दृष्टिकोण

बौद्ध दर्शन में सम्यक् विचार, सम्यक वाणी और सम्यक कर्म पर बल दिया गया है। ध्यान और सजगता (Mindfulness) के माध्यम से व्यक्ति मानसिक शांति और भावनात्मक संतुलन प्राप्त कर सकता है।

आज विश्वभर में माइंडफुलनेस की लोकप्रियता यह सिद्ध करती है कि प्राचीन भारतीय ज्ञान आज भी उपयोगी है।

आधुनिक युग की चुनौतियाँ

1. डिजिटल व्यसन: सोशल मीडिया और स्मार्टफोन ने जीवन को सरल बनाया है, किंतु अत्यधिक उपयोग ने ध्यान भंग, समय की बर्बादी और मानसिक तनाव जैसी समस्याएँ उत्पन्न की हैं। व्यक्ति अपनी

वास्तविक पहचान के स्थान पर आभासी पहचान बनाने में अधिक रुचि लेने लगा है।

2. नैतिक मूल्यों का संकट:

आर्थिक सफलता की अंधी दौड़ में ईमानदारी, संवेदनशीलता और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे मूल्य कमजोर होते जा रहे हैं। व्यक्तित्व का मूल्यांकन चरित्र के बजाय धन और पद के आधार पर होने लगा है।

3. मानसिक तनाव और अवसाद:

प्रतिस्पर्धा, बेरोजगारी, पारिवारिक विघटन और सामाजिक दबाव के कारण युवाओं में तनाव और अवसाद की समस्या बढ़ रही है। यह स्थिति व्यक्तित्व विकास को गंभीर रूप से प्रभावित करती है।

4. उपभोक्तावाद और भौतिकता:

आधुनिक समाज में सफलता का मापदंड अक्सर भौतिक संपत्ति को माना जाता है। इससे व्यक्ति की इच्छाएँ निरंतर बढ़ती जाती हैं और संतोष का भाव समाप्त होने लगता है।

5. असहिष्णुता और वैचारिक संघर्ष:

विचारों की विविधता को स्वीकार करने की क्षमता कम होती जा रही है। सामाजिक और डिजिटल मंचों पर मतभेद अक्सर संघर्ष का रूप ले लेते हैं। ऐसी स्थिति में अनेकांतवादी दृष्टिकोण की आवश्यकता पहले से अधिक बढ़ गई है।

प्राचीन ज्ञान और आधुनिक चुनौतियों का समन्वय

व्यक्तित्व निर्माण का भविष्य केवल आधुनिक तकनीकों में नहीं, बल्कि प्राचीन मूल्यों और आधुनिक आवश्यकताओं के संतुलित समन्वय में निहित है।

- आत्मज्ञान को आत्ममूल्यांकन और मनोवैज्ञानिक जागरूकता से जोड़ा जाए।

- संयम को डिजिटल अनुशासन के रूप में विकसित किया जाए।

- अनेकांतवाद को संवाद और सहिष्णुता की संस्कृति से जोड़ा जाए।

- अहिंसा को सामाजिक संवेदनशीलता और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व का आधार बनाया जाए।

- अपरिग्रह को टिकाऊ जीवनशैली (Sustainable Lifestyle) से जोड़ा जाए।

- ध्यान और स्वाध्याय को मानसिक स्वास्थ्य के साधन के रूप में अपनाया जाए।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं व्यक्तित्व निर्माण सतत प्रक्रिया है, जो केवल बाह्य सफलता प्राप्त करने के लिए नहीं, बल्कि संतुलित, नैतिक और सार्थक जीवन जीने के लिए आवश्यक है। भारतीय ज्ञान परंपरा ने व्यक्तित्व विकास के जो सिद्धांत हजारों वर्ष पूर्व प्रस्तुत किए थे, वे आज भी प्रासंगिक हैं। आधुनिक युग की चुनौतियाँ भले ही नई हों, किंतु उनके समाधान का आधार आत्मसंयम, आत्मज्ञान, सहिष्णुता,

चुनांचे चुनाव खत्म ही क्यों होते हैं यार

डॉ. मुकेश असीमित

drmukeshaseemit@gmail.com



करुणा और नैतिकता जैसे शाश्वत मूल्य ही हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम प्राचीन ज्ञान को अतीत की विरासत मात्र न मानें, बल्कि उसे वर्तमान जीवन की समस्याओं के समाधान के रूप में स्वीकार करें। जब प्राचीन मूल्य और आधुनिक दृष्टि का समन्वय होगा, तभी सशक्त, संतुलित और आदर्श व्यक्तित्व का निर्माण संभव हो सकेगा।



चुनाव संपन्न हो चुके थे। लोकतंत्र का महाकुंभ अब “रिज़ल्ट दर्शन” की साधना में लीन था। तिकड़मों की ढोलक बज चुकी थी, नारों की नगाड़ेबाज़ी थककर कोने में पड़ी थी, और कार्यकर्ताओं की बैटरियाँ, जो कभी फुल चार्ज थीं, अब “लो पावर मोड” में आ चुकी थीं। जोश का जो नींबू था, उसे इतना निचोड़ा गया कि अब छिलके भी पानी माँग रहे थे।

इधर नेताजी अपने दरबार में विराजमान थे, चारों ओर हवाइयाँ उड़ रही थीं, जैसे मानसून आने से पहले आसमान अपनी प्रैक्टिस कर रहा हो। चेहरे पर चिंता की लकीरें उभरकर नेताजी के चेहरे को बीभत्स बना रही थीं। कुर्सी को उन्होंने ऐसे जकड़ रखा था जैसे बच्चा अपनी टॉफी को पकड़कर बैठता है कि कोई दूसरा बच्चा उससे छीन न ले।

पास ही कुछ चुने हुए चाटुकार बैठे थे, लोकतंत्र के असली एम्बुलेंस कर्मी मान लीजिए इन्हें। उनका काम होता है नेताजी की गिरती हुई हिम्मत को कृत्रिम साँस देना।

“सर, सर्वे-वरवे सब बिकाऊ होते हैं... असली सर्वे तो जनता के दिल में

होता है, है कि नहीं? और जनता के दिल आपने गिरवी रख छोड़े हैं!”

दूसरे कार्यकर्ता ने भी चाटुकारिता की चटनी से सना अपना दाँव फेंका, “आप चिंता न करें, ईवीएम इस बार बहुत संस्कारी है... आज्ञाकारी है... वही करेगी जो आपने सिखाया है।”

नेताजी ने एक गहरी साँस ली, फिर टीवी की ओर घूरते हुए बोले, “ये सर्वे वाले तो ससुरे हमारी कुंडली बिगाड़ने पर तुले हैं। हर चैनल पर हमारी हार का योग बना रहे हैं। कहीं ये चुनावी पंडित विपक्ष के रिश्तेदार तो नहीं हैं ससुरे?”

टीवी पर एंकर चीख-चीखकर बता रहा था, “एग्जिट पोल में बड़ा उलटफेर!”

नेताजी के चेहरे का भाव कुछ-कुछ ऐसा हो गया जैसे बच्चे का परीक्षा परिणाम देखते समय होता है, “कहीं इस बार भी नंबर कम तो नहीं आ गए?”

उधर पार्टी ऑफिस में “चिंतन-मनन-मंथन” की त्रिवेणी बहने लगी थी। हार की स्थिति में किसे बलि का बकरा बनाया जाए, इसकी सूची

तैयार हो रही थी। एक वरिष्ठ नेता सुझाव दे रहे थे, “इस बार हार का ठीकरा ईवीएम पर ही फोड़ देते हैं... पुराना नुस्खा है, पर हर बार अच्छा ही चला है।”

दूसरे ने टोका, “नहीं-नहीं, इस बार थोड़ा इनोवेशन लाना पड़ेगा... जनता भी अब सयानी हो गई है। पुराने जुमलों पर हम पर हँसने लगी है।”

नेताजी बीच-बीच में अपने आपको चिंतन की परम मुद्रा में लाने को आँखें बंद कर, कुर्सी को और कसकर पकड़ते हुए बुदबुदाते, “चार मई के बाद गंगा नहाऊँगा... माँ ने बुलाया तो है, पर अभी धारा बहुत तेज है। कहीं बह गया तो चेलों-चपाटों का क्या होगा,”

उनके इस “संन्यासी-प्रवचन” को सुनकर चाटुकारों ने तुरंत ताली बजाई, “वाह सर! क्या त्याग है... आप तो साक्षात् आधुनिक वाल्मीकि हैं, डकैत से महर्षि बनने की परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं!”

नेताजी ने एक पैर पर खड़े होकर योगासन की कोशिश की, पर जैसे सत्ता का संतुलन डगमगाया उसी प्रकार उनका संतुलन भी डगमा गया। तुरंत कुर्सी को फिर से थाम लिया, “अभी संन्यास का समय नहीं है... ये कुर्सी मुझे जाने नहीं देगी।”

इधर रिपोर्ट्स आ रही थीं कि इस बार “हिंसा भी मनमुताबिक नहीं हो पाई।”

नेताजी ने खीझकर कहा, “ये सरकार भी न... हर बार हमारे प्लान में बाधा

डाल देती है। धनबल, बाहुबल सब पस्त हो गया... अब सिर्फ भाग्यबल ही बचा है।”

टीवी पर एक और सर्वे कोढ़ में खाज की तरह चमका, नतीजे और भी निराशाजनक। नेताजी का धैर्य जवाब दे गया, “बंद करो ये सब! ये सर्वे वाले देशद्रोही हैं... अगली बार इन्हें ही चुनाव लड़वा देंगे, तब पता चलेगा!”

कुर्सी को और कसकर पकड़ते हुए उन्होंने अंतिम घोषणा की, “मैं तो बस 140 करोड़ भाई-बहनों के लिए करता हूँ... मेरा क्या है, किसी दिन झोला उठाऊँगा और चल दूँगा...”

इतना कहते-कहते उनकी निगाह फिर से कुर्सी पर टिक गई। झोला उठाने की बात में जो हल्कापन था, वह सेकंड भर में उड़ गया। कहीं वे खुद ही इस बात के साथ न उड़ जाएँ, इसलिए कुर्सी को और कसकर पकड़ लिया।

वो थोड़ी देर अपनी आँखें सिकोड़कर गम्भीर विचार करते रहे। फिर उनके मुख से स्वर फूटा, “ये चुनाव खत्म ही क्यों होते हैं यार... ताकि हार-जीत का फैसला हो ही नहीं। हम कोई काम न करें, सिर्फ और सिर्फ चुनाव ही लड़ते रहें... तो भी जनता के खून पसीनो की कमाई से अच्छी चांदी काटी जा सकती है।



पुस्तक समीक्षा

कोशा: प्रकाश

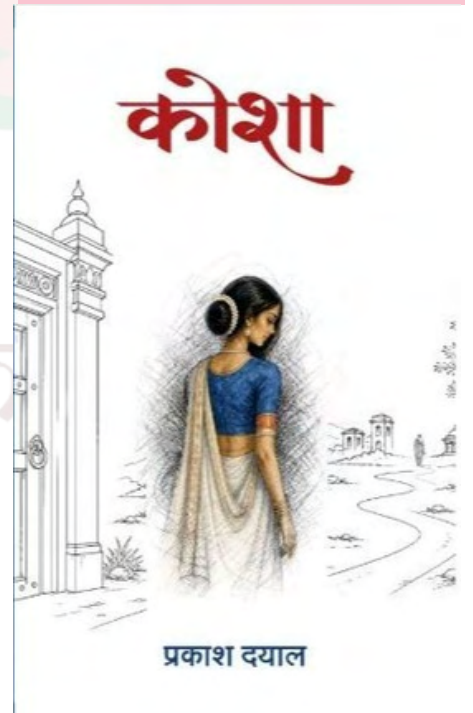
दयाल का उपन्यास
प्रतिबद्धता, बलिदान और
सच्चे प्रेम की गाथा



सुरेन्द्र अग्निहोत्री

संपादक (नूतन कहानियाँ)

agnihotri1966@gmail.com



तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के भव्य भारत की पृष्ठभूमि पर लिखा गया एक व्यापक उपन्यास 'कोशा' (शतरंग प्रकाशन) प्रेम, दर्शन और आध्यात्मिक परिवर्तन को आपस में बुनता है। श्रद्धेय जैन भिक्षु स्थूलभद्र के जीवन से प्रेरित यह उपन्यास, सांसारिक प्रेम और मोक्ष (ज्ञान) की खोज के बीच के शाश्वत संघर्ष को

दर्शाता है। मगध के समृद्ध साम्राज्य के दौरान, मुख्य अमात्य (मंत्री) शकटाल के प्रतिभाशाली पुत्र स्थूलभद्र को अप्रत्याशित रूप से साम्राज्य की प्रसिद्ध राजकीय गणिका, कोशा से प्रेम हो जाता है। उनका यह रिश्ता बारह अविस्मरणीय वर्षों तक फलता-फूलता है, जो केवल वासना पर नहीं बल्कि गहरी सहभागिता, आपसी सम्मान और भावनात्मक समर्पण पर आधारित था। उनकी दुनिया तब बिखर जाती है जब परिस्थितियाँ स्थूलभद्र को अपनी हर प्यारी चीज़ को त्यागने और एक जैन भिक्षु का जीवन अपनाने के लिए मजबूर कर देती हैं।

दो साल बाद, नियति उन्हें फिर से मिलाती है जब वे चातुर्मास (चार महीने के पवित्र मानसूनी प्रवास) के लिए कोशा के निवास पर लौटते हैं। जिस पुरुष से वह अब भी प्रेम करती है, उसे एक संन्यासी के रूप में अपने सामने पाकर कोशा उस जीवन को वापस पाने के लिए संघर्ष करती है जो कभी उनका हुआ करता था। फिर भी, स्थूलभद्र का अटूट आध्यात्मिक संकल्प डगमगाता नहीं है, जिससे उपन्यास का सबसे मर्मस्पर्शी, भावनात्मक और दार्शनिक आमना-सामना देखने को मिलता है। उनका यह असाधारण आत्म-अनुशासन दूसरों में प्रशंसा जगाता है, तो कुछ में ईर्ष्या भी। प्रमथ नाम का एक साथी भिक्षु, स्थूलभद्र की इस उपलब्धि की बराबरी करने का प्रयास करता है। लेकिन वह उन्हीं प्रलोभनों के आगे घुटने टेक देता है जिन्हें जीतने का उसे

पूरा विश्वास था। उसका यह दुखद पतन स्थूलभद्र की दृढ़ता के विपरीत एक शक्तिशाली उदाहरण पेश करता है, और आध्यात्मिक आकांक्षा व मानवीय इच्छा के बीच की धुंधली रेखा को उजागर करता है।

जैसे-जैसे वर्ष बीतते हैं, दोनों मुख्य किरदारों में गहरा बदलाव आता है। स्थूलभद्र अपने समय के अग्रणी जैन आचार्यों में से एक बनकर उभरते हैं। वहीं कोशा, धन और विलासिता के खोखलेपन से निराश होकर, वैराग्य का एक अलग मार्ग चुनती है। अपनी प्रसिद्धि और धन-दौलत को पीछे छोड़कर, वह प्रकृति की शांत गोद में बस जाती है और ग्रामीण समुदायों की सेवा में अपना जीवन समर्पित कर देती है। इस तरह वह सांसारिक प्रशंसा से परे एक गहरे उद्देश्य की खोज करती है।

ऐतिहासिक विवरणों से समृद्ध होने के साथ-साथ आधुनिक पाठकों के लिए बेहद प्रासंगिक, 'कोशा' एक ऐसे स्थायी प्रेम की कहानी है जो अधिकार की भावना से परे है। यह वासना के ऊपर सिद्धांतों को चुनने के साहस और आत्म-खोज के माध्यम से मुक्ति की संभावना को दर्शाती है। ऐसे समय में जब रिश्ते तेजी से क्षणिक जुड़ाव में बदलते जा रहे हैं, 'कोशा' प्रतिबद्धता, बलिदान और सच्चे प्रेम की परिवर्तनकारी शक्ति का एक ताज़ा उत्सव प्रस्तुत करती है।

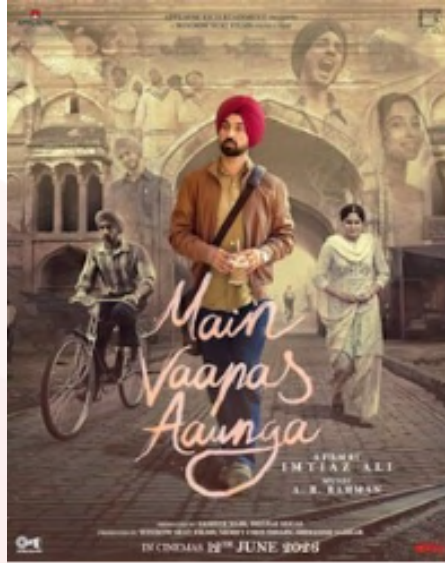
बारीक ऐतिहासिक शोध, काव्यात्मक शैली और दार्शनिक गहराई का

मिश्रण, यह उपन्यास ऐतिहासिक कथाओं, साहित्यिक उपन्यासों और आध्यात्मिक कहानियों के पाठकों को बेहद पसंद आएगा। यह मानवीय मूल्यों की एक ऐसी कालजयी कहानी है जो हमें याद दिलाती है कि प्रेम, अपने सर्वोच्च रूप में, बांधता नहीं, बल्कि मुक्त करता है। स्थूलभद्र की बातें सुनते ही संवेदना की नई राह खुलती दिखाई दे। 'कोशा' की सांसों की स्वर लहरी में वही उत्ताप है जो भाव और संवेदना की गहराई में खो जाने पर होता है। 'कोशा' उपन्यास में अर्थ की सांद्रता है और लय का एक ऐसा ताना-बाना जो मन को मोह लेता है। प्रेम के बिछोह की भावुकता की वास्तविक स्थिति परिस्थिति और तमाम मनोदशा की मार्मिक त्रासदी में भी वितृष्णा बहुत प्रभावी तौर पर विशिष्टता के साथ लिखी है। विधागत उपन्यास में राग और विराग के अन्तरगुथे ज्ञात-अज्ञात प्रसंग स्वाभाविक विन्यस्ति उपस्थित है।

कार्यक्रमानुसार कथानक का इतिहास ऐतिहासिक घटना को भौतिकवादी जीवन लालसाओं और उनकी भागदौड़ में अचानक एक दुर्घटना से भावनाएं विछिन्न होती है। राग में डूबा स्थूलभद्र जैन मुनि बन जाता है; प्रेयसी कोशा को राह में छोड़ कर। प्रेम विक्षोभ पर परिपक्व कोशा को आज विविध आयामों से देखने-समझने की ज़रूरत है। 'कोशा' की भाषा बिल्कुल सहज और प्रवाहमान है। लेखक और पाठक का इतना

मैं वापस आऊंगा

गहन तादात्म्य हिंदी उपन्यास के मौजूदा परिदृश्य में एक विरल चीज है। फिर अपने ही ढंग से अलग उपन्यासकार ने आत्मकथा सरीखा निजत्व के साथ 'कोशा' और स्थूलभद्र के जीवन के अंतरंग और बहिरंग रूप को विस्तार से समूची वेदनाओं आत्मिक द्वंद्वों के साथ इत्मीनान से लिखा है।



इम्तियाज़ अली द्वारा निर्देशित भारत-पाक विभाजन की पृष्ठभूमि पर आधारित भावुक प्रेम कहानी 'मैं वापस आऊंगा' को दर्शकों और आलचकों से शानदार प्रतिक्रिया मिली है। फ़िल्म एक ऐसे पोते के इर्द-गिर्द घूमती है जो अपने मरणासन्न, स्मृतिभ्रंश से ग्रसित दादा की देखभाल करता है, जो 1947 में भारत के विभाजन के दौरान एक दुखद प्रेम कहानी की यादों में खोया रहता है। यह 2026 की आठवीं सबसे अधिक कमाई करने वाली हिंदी फिल्म है, जिसमें फिल्म में नसीरुद्दीन शाह (बूढ़े कीनू), वेदांग रैना (युवा कीनू), शरवरी वाघ (जिया/अफसाना) और दिलजीत दोसांझ मुख्य भूमिकाओं में हैं, जबकि बनिता संधू, रजत कपूर, संजय सूरी, अंजना सुखानी और दानिश पंडोर सहायक भूमिकाओं में हैं।

95 वर्षीय ईश्वर सिंह ग्रेवाल उर्फ़

कीनू (नसीरुद्दीन शाह) मृत्युशय्या पर हैं। बिगड़ते स्वास्थ्य और मनोभ्रंश की गंभीर अवस्था के बावजूद, वे जीवन से विमुख होने से इनकार करते हैं और पंजाब, पाकिस्तान के सरगोधा स्थित अपने पैतृक घर लौटने की इच्छा को दोहराते रहते हैं। युवा इशर को जिया/अफ़साना नाम की एक महिला से बेइंतहा प्यार हो जाता है किन्तु विभाजन के दौरान हुई हिंसा और बड़े पैमाने पर हुए पलायन में वे बिछड़ जाते हैं। इशर अपने परिवार के पुरुषों के साथ भारत वापस चला गया, जबकि परिवार की महिलाएं और अफ़साना वहीं रह जाती हैं। कीनू के पोते निर्वैर (दिलजीत दोसांझ) उनकी असंबद्ध बातों को समझने और उनके अतीत की छानबीन करते हैं। अंततः अफ़साना के परिवार का पता लगा लेते हैं किन्तु तभी उन्हें एक चौंकाने वाली सच्चाई का पता चलता है कि अफ़साना की मृत्यु 10 साल पहले हो चुकी थी, उसने अपना पूरा जीवन अपने वादे को पूरा करने और वापस लौटने का इंतज़ार करते हुए बिताया था। वीडियो कॉल के दौरान, कीनू को युवा जिया का भ्रम होता है; जिससे वह 'जाने की अनुमति' मांगते हैं। जिया उन्हें अनुमति दे देती है और वह शांतिपूर्वक इस दुनिया से विदा लेते हैं।

फ़िल्म का संगीत ए. आर. रहमान ने

हरिगीतिका

प्रो. मधु चतुर्वेदी

अध्यक्ष, सांस्कृतिक प्रकोष्ठ, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय
madhuchaturvedi@hotmail.co.uk



तैयार किया है और गीत इरशाद कामिल ने लिखे हैं। गीत 'क्या कमाल है' में सबसे मार्मिक रूप से दर्शाया गया है, जो संघर्षग्रस्त भूमि से विस्थापित पीड़ितों की विनाशकारी छवियों से भरा है। इस फ़िल्म की एकमात्र कमज़ोरी इसका खराब सम्पादन है, जिसके चलते यह फिल्म दर्शकों को भारी लगने लगती है।

वातायनम् ब्यूरो



वातायनम् के सुधि पाठकों को मेरा आत्मिक नेहवन्दन!

साथियो, पिछले अंक में हम गीतिका छन्द के रचनाविधान से परिचित हुए। आज हम पहले हरिगीतिका के रचनाविधान को समझते हैं और फिर हम जानेंगे कि इन दोनों छन्दों में क्या अन्तर है। हरिगीतिका भी एक सममात्रिक छन्द है। इसकी प्रत्येक पंक्ति में 28 मात्राएँ होती हैं; बारह-सोलह का क्रम रहता है। पंक्ति में प्रथम चरण सोलह मात्रा का व द्वितीय चरण बारह मात्रा का होता है। यानि सोलहवीं मात्रा के बाद यति व अठ्ठाईसवीं पर विराम होता है। पंक्ति का अन्त लघु-गुरु से होना आवश्यक है। इस छन्द का उपयोग भी प्रायः भक्तिपरक रचनाओं या कथा प्रसंगों में किया जाता है। इसमें भी पंक्तियों की कोई सीमा नहीं है पर चार-चार पंक्तियों में समान तुकान्त आवश्यक है। उदाहरणतः

प्रभु गोद जिसकी वह यशोमति, दे रहे हरि मान हैं।

गोपाल बैठे आधुनिक रथ, पर सहित सम्मान हैं॥

मुरली अधर धर श्याम सुन्दर, जब लगाते तान हैं।

सुनकर मधुर धुन भावना में, बह रहे रसखान हैं॥

रामस्तुति 'श्री राम चंद्र कृपालु भज मन' भी हरिगीतिका छन्द का सुन्दर उदाहरण है। यह मात्र विवाह सम्बन्धी आयोजन में ही नहीं, वरन सभी प्रकार के पूजा आयोजन में रामस्तुति के साथ ही संलग्न कर के गाया जाता है।

मन जाहि राचेउ मिलहि सोवर सहज सुन्दर साँवरो।

करुणा निधान सुजान सीलु सनेह जानत रावरो॥

एहि भांति गौरी असीस सुन सिय सहित हिय हरषित अली।

तुलसी भवानिहि पूजी पुनि-पुनि मुदित मन मन्दिर चली॥

अब जानते हैं, गीतिका व हरिगीतिका में अन्तर, तो हरिगीतिका में जहाँ प्रत्येक पंक्ति में अठ्ठाईस मात्राएँ व सोलह-बारह पर यति होती है, वहीं गीतिका में छब्बीस मात्राएँ व चौदह-बारह पर यति होती है। दोनों में ही पंक्ति का अन्त लघु-गुरु से होना आवश्यक है। गीतिका का उदाहरण हम पिछले अंक में देख चुके हैं। तो साथियो, आशा है आप हरिगीतिका के रचना विधान को समझ गए होंगे। अगले अंक में मिलते हैं, किसी अन्य छन्द के रचनाविधान के साथ। तब तक के लिए अनन्त मंगलकामनाएं!



शिखा वाष्णैय

ब्लॉगर

shikha.v20@gmail.com



प्राग (प्राह) — चेक गणराज्य की राजधानी - यूरोप का यह पुराना शहर अपने किलों, चर्चों, पत्थर की गलियों और पुराने मकानों के लिए जाना जाता है - यहाँ इतिहास गलियों में चलता-फिरता महसूस होता है। एक जगह आपको सदियों पुरानी अल्केमी की रहस्यमयी दुनिया में ले जाती है, तो दूसरी छोटे-छोटे घरों में सिमटी लोगों की जिंदगी दिखाई देती है; फिर वही शहर फ्रांज काफ़्का के ज़रिए मनुष्य के अस्तित्व और उसकी उलझनों से सामना करा देता है। प्राग को देखते हुए बार-बार एक सवाल सामने आता रहा कि क्या मनुष्य हमेशा से किसी तलाश में रहा है -

जीवन को थोड़ा और लंबा करने की, मृत्यु को समझने की या अपने अस्तित्व का कोई अर्थ खोजने की। इसी तलाश की एक झलक मिली 'स्पेकुलम अल्केमी' में।

स्पेकुलम अल्केमी - जब मनुष्य अमरता की घुट्टी खोज रहा था

मृत्यु एक ऐसा विषय है, जिससे पार पाने के लिए मनुष्य हमेशा से ही प्रयत्नशील रहा है। इसके लिए हर युग में अलग-अलग तरह के प्रयोग होते रहे हैं। इनमें से ही एक थी अल्केमी यानी 'रसायन विद्या'। प्राग के पुराने टाउन स्क्वेयर से थोड़ा आगे बढ़ें तो स्पेकुलम अल्केमी (Speculum Alchemiae) नाम का एक म्यूज़ियम है, जो कभी

एक गुप्त भूमिगत प्रयोगशाला थी, जिसके ऊपर एक दवा की दुकान चलाई जाती थी, ताकि नीचे होने वाले प्रयोगों से निकलने वाले धुँएँ और गंध को छिपाया जा सके। इस गुप्त भूमिगत जगह का पता 2002 में तब चला, जब वल्तावा नदी में बाढ़ के कारण सड़क का एक हिस्सा धँस गया और वहाँ से एक सुरंग का रास्ता दिखाई दिया। खुदाई के बाद छिपे हुए कमरे, रास्ते और अल्केमी लैब के अवशेष सामने आए।

यह जगह 16वीं-17वीं सदी की मानी जाती है, जब रुडोल्फ द्वितीय रोमन साम्राज्य का सम्राट था, जिसे अल्केमी, ज्योतिष और रहस्यमय विज्ञानों में गहरी रुचि थी। उसने पूरे



यूरोप से अल्केमिस्ट, वैज्ञानिक और कलाकारों को प्राग बुलाया। उद्देश्य था - साधारण धातु को सोने में बदलना, पारस पत्थर खोजना और अमरता या दीर्घायु का रहस्य समझना। लैब में बड़ी-बड़ी भट्टियाँ थीं, अलग-अलग तापमान पर पदार्थों को गरम किया जाता था और काँच के बर्तनों, फ्लास्क आदि का इस्तेमाल होता था; जड़ी-बूटियाँ, खनिज, धातुएँ और तरह-तरह के दुर्लभ पदार्थ यहाँ रखे जाते थे। दीवारों पर Terra, Aqua, Aer, Ignis यानी भूमि, पानी, हवा और आग जैसे शब्द भी लिखे हुए हैं। अल्केमिस्ट इसे हर किसी के लिए उपलब्ध ज्ञान नहीं मानते थे और कोड, प्रतीक तथा गुप्त भाषा का इस्तेमाल करते थे। चर्च के प्रभाव के कारण भी इस विद्या को लेकर खतरा था इसलिए रुडोल्फ द्वितीय का संरक्षण होने के बावजूद अल्केमी एक 'राजकीय रूप से समर्थित, नियंत्रित और गुप्त' गतिविधि बनी रही। ये लोग लगातार प्रयोग करते रहे, इन्हीं प्रयोगों और उपकरणों ने आगे चलकर आधुनिक रसायन विज्ञान की नींव रखने में योगदान दिया।

इस रहस्यमयी भूमिगत दुनिया से बाहर निकलते ही प्राग मुझे एक बिल्कुल दूसरी दुनिया में ले गया, जहाँ अमरता की खोज नहीं, बल्कि रोज़मर्रा की ज़िंदगी के लिए जगह भी बहुत कम थी।

गोल्डन लेन – जहाँ एक पूरा परिवार कुछ फ़ीट में रहता था
क्या हम कल्पना भी कर सकते हैं कि



लगभग 6-10 या 8-15 फीट के एक घर में एक तरफ़ रसोई, वर्कशॉप, एक तंग-सी सोने की जगह और उसी में मल आदि त्यागने के लिए रखा एक बड़ा-सा कटोरेनुमा शौचालय हो? और इसी दड़बेनुमा घर में एक पूरा परिवार रहता हो! यूरोप में भी उस जमाने में प्लम्बिंग आदि की सुविधा घरों में नहीं थी। इन घरों को देखकर सहज ही अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि उस समय लोगों की रोज़मर्रा की ज़िंदगी कितनी कठिन रही होगी। गोल्डन लेन आज शहर के प्रमुख टूरिस्ट अट्रैक्शन्स में से एक है और देखने में बेहद खूबसूरत लगती है। अब इन घरों का नवीनीकरण कर इन्हें उस समय की जीवन-शैली दिखाने वाले छोटे म्यूज़ियम और सुविनियर की दुकानों में बदल दिया गया है।

इन घरों को किले की किलेबंदी की दीवार के मेहराबों के भीतर फ़िट करने के लिए बनाया गया था, 16वीं शताब्दी में जिसमें किले के रक्षक रहा करते थे। बाद में यहाँ सुनार रहने लगे

और फिर शहर के गरीब लोग इन घरों में बस गए। इसी गोल्डन लेन ने मुझे एक ऐसे व्यक्ति से भी मिलाया, जिसकी पूरी रचनात्मक दुनिया कहीं न कहीं इसी शहर से जुड़ी हुई है - फ्रांज काफ़्का।

काफ़्का का छोटा-सा कमरा और बड़ी-सी दुनिया

इसी गोल्डन लेन के मकान नंबर 22 में फ्रांज काफ़्का 1916 से 1917 तक रहे थे; यह उनकी बहन का घर था। यहीं उन्होंने अपनी मशहूर रचना 'ए कन्ट्री डॉक्टर' पूरी की। आज यह घर एक बुकस्टोर के रूप में है, जहाँ उनकी पुस्तकें बिकती हैं। सभी पुस्तकें जर्मन भाषा में थीं। काफ़्का की निशानी के रूप में मैंने प्राग के स्थानीय पत्थरों से बना एक ब्रेसलेट खरीद लिया। आधुनिक प्राग में जगह-जगह काफ़्का की उपस्थिति महसूस होती है।

रोटेटिंग हेड - बिखरता और फिर बनता काफ़्का

फ्रांज काफ़्का आधुनिक विश्व साहित्य के महत्वपूर्ण लेखकों में से एक थे। उनका जन्म 1883 में प्राग में हुआ था। कानून की पढ़ाई करने वाले काफ़्का पेशे से बीमा कार्यालय में काम करते थे, लेकिन उनकी पहचान एक गहरे और चिंतनशील लेखक के रूप में बनी। उनकी रचनाओं में व्यक्ति की बेबसी, अस्तित्व का संकट और एक अजीब-सी नौकरशाही की दुनिया दिखाई देती है। उनकी विशिष्ट शैली 'काफ़्कास्की' के नाम से प्रचलित है-

हिंदी में 'र' का सौंदर्य

ऐसी स्थिति जो अजीब,
उलझी हुई और डरावनी हो।

प्रसिद्ध चेक कलाकार डेविड चेर्नी द्वारा बनाई गई काफ़्का की 'रोटेटिंग हेड' मूर्ति इसी भावना को बहुत खूबसूरती से पेश करती है। करीब 11 मीटर ऊँची इस मूर्ति में 42 स्टील की परतें हैं, जो लगातार घूमती रहती हैं; चेहरा बिखरता है और फिर उसी बिखराव से दोबारा आकार ले लेता है। उसे देखते हुए लगता है जैसे किसी व्यक्ति की पहचान और अस्तित्व बार-बार टूट रहा हो और फिर बन रहा हो - ठीक काफ़्का की कहानियों की तरह। शायद यही प्राग की खूबसूरती है। एक ही शहर में हम मनुष्य की अमरता पाने की कोशिश को भूमिगत अल्केमी प्रयोगशाला में देखते हैं, फिर गोल्डन लेन के छोटे-छोटे घरों में उसके सीमित जीवन को और अंत में काफ़्का के घूमते चेहरे में उसके अस्तित्व और पहचान की उलझन को।

प्राग में और भी बहुत कुछ घूमने, देखने लायक है परन्तु यह केवल घूमने या देखने का शहर नहीं है; यह धीरे-धीरे पढ़े जाने वाला शहर है। पंक्तिबद्ध पेस्टल रंग की इमारतें विभिन्न फ़लेवर की आइसक्रीम-ब्रिक जैसी सुन्दर लगती हैं परन्तु इनके हर पत्थर में किसी बीते समय की स्मृति और हर मोड़ पर किसी न किसी तलाश के निशान हैं।



डॉ. अशोक बत्रा

सेवानिवृत्त प्राचार्य, व्याकरण विशेषज्ञ
ashokbatra.ashok@gmail.com



हिंदी-वर्णमाला बहुत सोच समझकर वैज्ञानिक आधार पर निर्मित हुई है; ऐसा कहते हैं कि देवनागरी लिपि के प्रत्येक वर्ण की बनावट और उसके उच्चारण का आकार - दोनों में आकृतिगत समानता है। यह बात सुनने में जितनी रोचक और मनमोहक लगती है, जब सिद्ध करने बैठते हैं तो उतनी ही हवा-हवाई लगती है। ऐसा लगता है कि कभी इसका विज्ञान रहा होगा जिसका प्रमाण देने वाला या परिचय देने वाला अब दुनिया में कोई नहीं बचा।

जब मैं हिंदी के 'र' के बारे में सोचता हूँ तो मेरे मन में संशय उठता है कि अवश्य इसकी आकृति में कोई ऐसा महत्वपूर्ण कारण रहा होगा कि इसका रूप-रंग इस तरह का रखा गया होगा जिसके कारण अहिंदी भाषी को समस्याएँ होती हैं। 'र' के इतने रूप हैं कि यह बहुरूपिया-जैसा लगता है। कभी इसे शिरोरेखा के ऊपर रखा जाता है - आशीर्वाद - की तरह। कभी व्यंजन-वर्णों के चरणों में रखा जाता है - ग्र, क्र, प्र - आदि की तरह। इस कारण हिंदी जगत में 'प्रकाश' और 'अग्रवाल' जैसे शब्दों की अंग्रेजी-वर्तनी अधिकांशतः गलत लिखी जाती है।

कभी जगह न होते हुए भी 'र' को जबरदस्ती किसी व्यंजन में स्थापित किया जाता है - स्, त्र, श्र - आदि में। सोचिए - 'स्' को अब तक अधिकतर लोग 'स्त्र' पढ़ते हैं। यह 'र' महाराज की घुसपैठ की करतूत है। बेचारे 'त्' को 'र' को जगह देने के लिए अपनी लंबी सूँड कटानी पड़ी। बेचारे 'श' के साथ तो इतना अत्याचार हुआ कि उसे अपनी शक्ल ही बदलनी पड़ी - इसी 'र' की घुसपैठ के कारण 'श (हल्)' को र के साथ मिलकर 'श्र' जैसा रूप अपनाना पड़ा। जिन व्यंजनों के नीचे गोलाई होती है, वहाँ र को तिपाई के आकार में रखा जाता है - ट्र, ड्र - आदि में। 'र' में 'उ' तथा ऊ की मात्रा नहीं लग सकती; इस कारण उसे 'र' को हृदय में स्थान देना पड़ता है। पाँव की जगह हृदय में स्थान देना अच्छी बात है, क्या इसका कोई विकल्प नहीं था? 'र' के रेफ़ रूप की आयोजना क्यों करनी पड़ी? केवल 'र' को ही शिरोरेखा के ऊपर चढ़ाया गया, और किसी व्यंजन को नहीं। मगर क्यों? क्या इतने रूपों से बचने के लिए 'र' के रूप में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता था?

ऐसा नहीं कि देवनागरी में वर्णगत

तीन बाल कविताएं

भगवती प्रसाद गौतम

राजस्थान साहित्य अकादमी से बाल साहित्य पुरस्कार

प्राप्त लेखक

Bpgautam.1943@gmail.com



आकृतियों में परिवर्तन न किए गए हों। बहुत परिवर्तन किए गए। हिंदी के अ, छ, झ, ध, भ, ल, त्र के रूप में समयानुसार परिवर्तन किए गए। फिर 'र' में ऐसा क्या वैशिष्ट्य था कि इसके रूप को बचा कर रखा गया? इसके कारण उत्पन्न दुरुहता को विषपान की तरह पी लिया गया। अगर इसके पीछे कोई गूढ़ रहस्य है, तो उस पर से परदा उठना चाहिए। जब भी मैं 'र' के रहस्य को खोलने बैठता हूँ तो एक शिला उस गुफा के ऊपर ढकी मिलती है जिसके भीतर घुसे बिना चैन नहीं मिलता। यदि किसी के पास इस ताले की चाबी हो तो कृपा अवश्य कीजिए।



सूरज दादा कितने अच्छे

सूरज दादा बड़े घमंडी
सीधे मुँह ना बात करें
आँख दिखाएं डाँट लगाएं
तीखे-तीखे वार करें।

सूरज दादा बड़े हठीले
करते कैसी मनमानी
अट्टहास कर पी जाते हैं
ताल-तलैया का पानी।

सूरज दादा बड़े अनोखे
स्वाँग बदलते रहते हैं
सर्दी में मुस्कान बिखेरें
पर गरमी में तपते हैं।

फिर भी दादा कितने अच्छे
मेघों की छाया करते
मेहनतकश लोगों के आँगन
सुख की फसलों से भरते।

अंधियारी रातों को हरकर
उजियारा बरसाते ये
धूप छांव का खेल रचाकर
जीवन-चक्र चलाते ये।

मनमर्जी के नाना

इधर कभी खुद से बतियाते
उधर नज़र से नज़र मिलाते
कभी छेड़ते अजब तराना
जब जब शेविंग करते नाना।

बड़े वाश-बेसिन पर जाकर
आईने को कुछ सहलाकर
रेज़र-ब्लेड सेट कर झटपट
मग में पानी भरते नाना।

नाना कहते, जब मन घुटता
शेविंग से चेहरा खिल उठता
मार पड़े यदि शीत लहर की
तब भी नहीं ठिठुरते नाना।

यों नाना की उम्र बड़ी है
छुई न अब तक मगर छड़ी है
अचरज होता हर मौसम में
कैसे धीरज धरते नाना।

'अरे नहा लो' कहती नानी
नाना करते आनाकानी
अपनी मनमर्जी के मालिक
नहीं किसी से डरते नाना
जब-जब शेविंग करते नाना।

हमने देखा आक्सीज़ोन

कोई घूमे दिल्ली मथुरा
कोई पहुँचे खंडवा-खरगौन
हमने देखा दादू के संग
सिटीपार्क में आक्सीज़ोन।

साफ़-स्वच्छ हर कोना-कोना
तुलसी पीपल वृक्ष घने
फूल-पात से लदे बगीचे
शुद्ध वायु के धाम बने
इधर नीम गुलमोहर झूमें

उधर डटे शीशम-सागौन।

देशी-परदेशी पंछी जब
भर उड़ान आ बस जाते
नित-नव धुन में करते कलरव
अपनी हाट लगा जाते
अंडाकार विहग-शाला पर
मंडराते रहते हैं ड्रोन।

कोयल-कुरजां, तीतर-तोते
बसे कई कौवे-कब्बू
देख-देख पुलकित थे बच्चे
दिशा-निशा, अब्बू-बब्बू
थिरकें कहीं मोर मस्ती में
चहके कहीं चिरैया सोन।

सजी दुकानों में इठलाएं
प्यारे खेल-खिलौने जी
लस्सी-जूस गटकते हम भी
चखते खड़ी-दौने जी
स्वाद बढ़ा अपनी टिक्की का
भुरका जब कुछ टचपट-नोन
हाँ, देखा हमने दादू के संग
सिटी पार्क में ऑक्सीज़ोन।

अंतरराष्ट्रीय सहित्य

फ़्रायड म्यूज़ियम लंदन

भाग 1

प्रगति टिपणीस

महा सचिव (हिंदुस्तानी समाज - रूस)
pragatinovmos@gmail.com



रास्तों को पैदल नापने की अपनी एक
कैफ़ियत होती है - राह के मुक़ाम
पथिकों का हाथ पकड़कर अपने
नगीनों से मिलवाने जो लगते हैं। ये
मुलाक़ातें सैर करने के लिए एक नया
हौसला दे जाती हैं। बेटे-बहू का घर
लंदन में बरो ऑफ़ हैम्पस्टेड के
बेलसाइज़ इलाक़े में है। एक दिन यों
ही भटकते-भटकते बेलसाइज़ लेन
और फिट्ज़जॉन एवेन्यू के संगम पर
खड़े स्याह पत्थर के सिगमंड फ़्रायड
के मुजस्सिमे से नज़रें चार हुईं। अब
जब मुलाक़ात दुनिया के सबसे नामी
मनोविश्लेषक से हो रही थी तो मन
और दिमाग़ को तेज़ रफ़्तार दौड़ना ही
था। फ़ौरन ही यह ख़याल कौंधा कि
इनका तो म्यूज़ियम भी है, लंदन में।
बहरहाल सैर की धुन में डूबे क़दम
इस ख़याल को ज़हन में दर्ज कर आगे
बढ़ गए। उस जगह से चंद मिनटों की
दूरी पर शांत-सी

मॉरेस्फील्ड गार्डन्स सड़क आ जाती
है, जिस पर चहलक़दमी करते
अचानक फ़्रायड म्यूज़ियम की दिशा
बताता साइनबोर्ड दिखा। मन उसी
पल उधर जाने को हुआ लेकिन उस
दिन वक़्त की तंगी थी और म्यूज़ियम
रमकर देखने की चाह, इसलिए यह
काम फ़ुरसत से करने के लिए रखा
गया। दिमाग़ में बार-बार विएना की
टूरिस्ट बस से देखा फ़्रायड का घर
घूमता रहा और यह मलाल भी कि
उसे देखना दूसरे कामों के बीच छूट
गया था; वह कहानी लंदन में नहीं
दोहरानी थी।

घर आकर इंटरनेट पर कुछ पन्ने
पलटने पर पता चला कि नाज़ी
हुकूमत के चंगुल से बचने के लिए
फ़्रायड परिवार जब लंदन आया था
तो उसका पहला बसेरा 39 एल्सवर्दी
रोड पर था, जो बेलसाइज़ इलाक़े में
ही है। ख़रामाँ-ख़रामाँ पाँव इस सड़क
और प्रिमरोज़-हिल पार्क से बिलकुल
सटे उस घर की ओर बढ़ गए। फ़्रायड
परिवार इस घर में बहुत कम वक़्त के
लिए रहा था, इसलिए इसके बाहर
उनके नाम की नीली गोलाकार प्लेटें
(ब्लू प्लाक्स) नहीं हैं। यूनाइटेड
किंगडम में नीली गोलाकार प्लेटें इस
बात का इशारा होती हैं कि फ़्लॉ



मुक़ाम की किसी अज़ीम शख़्सियत से वाबस्तगी रही है। इस घर से फ़्रायड परिवार का रिश्ता हमेशा दस्तावेज़ों के पन्नों का मोहताज रहेगा।

बहरहाल मेरे लिए वह खुश दिन आया जब मेरे पाँव 20 मॉरेस्फील्ड गार्डन्स भवन के अहाते में पड़े। कथई ईंटों से बनी इस इमारत पर दो नीली प्लेटें लगी हुई हैं: एक सिगमंड फ़्रायड (06.05.1856–23.09.1939) के नाम की और दूसरी आन्ना फ़्रायड (03.12.1895–09.10.1982) के नाम की। इस घर बनाम म्यूज़ियम को देखने के लिए दुनिया भर के लोग विभिन्न कारणों से वहाँ आते हैं - कुछ सिगमंड और आन्ना फ़्रायड के कामों से आकर्षित होकर तो कुछ लोग उनके जीवन और सिद्धांतों को उनकी चीज़ों के माध्यम से जानने के लिए और कुछ शायद इस बात का साक्षी होने के लिए कि नाज़ी ताक़त के चंगुल से बमुश्किल बचा एक यहूदी परिवार अपने काम और नेक साथियों की बदौलत अपनी ज़िन्दगी के आखिरी दिन किस सुकून से बिता पाया था। इसी घर में रॉयल सोसायटी के प्रतिनिधि बीमारी से त्रस्त सिगमंड फ़्रायड को अपनी सोसायटी की सदस्यता से नवाज़ने के लिए अपना चार्टर लेकर पहुँचे थे। इसी घर में एच जी वेल्स, वूल्फ़ दम्पति (लेओनार्ड और वर्जिनिआ) तथा देश-विदेश की तमाम महान हस्तियों का ताँता उनसे मिलने के लिए बँधा रहता था। इसी घर में रहते हुए आन्ना फ़्रायड ने पिता के काम को

नए आयाम दिए थे। घर जितना सिगमंड फ़्रायड इस घर में लगभग सवा साल ही रहे थे, जबकि आन्ना फ़्रायड इस चारदीवारी में 42 साल से अधिक रही थीं। इसी घर में उन्होंने बच्चों के शिक्षण और मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्रों में अभूतपूर्व काम किया था। भावात्मक दृष्टि से यह जितना सिगमंड फ़्रायड के नाम से जुड़ा हुआ है, उतना ही समाज के उत्थान और उद्धार के कामों के सिलसिले में आन्ना फ़्रायड के नाम से भी जुड़ा है।

म्यूज़ियम में दाखिले की दहलीज़ बगीचे से है। तारीख 21 फ़रवरी थी और बगीचे में वसंत चहक रहा था - वहाँ अगर सूखे दरख़्त थे तो नई कोपलों और कलियों से लदी झाड़ियाँ भी। ताज़ी घास की मखमली कालीन पर रंग-बिरंगे गुल मुस्कुरा रहे थे। सूरज की किरणों से अठखेलियाँ करती नरगिस अपने चटक पीले रंग पर इतरा रही थी। आलम मानो फ़्रायड परिवार के लंदन पहुँचने के बाद के एहसासात की तस्वीर खींचे हुए था। बाग़ से दहलीज़ पार करते ही क्रदम काँच की खिड़कियों वाले गलियारे में पड़ते हैं और वहाँ नज़रों के सामने Id-इदम्, Ego-अहम्, Superego-पराहम्, Psychoanalysis-मनोविश्लेषण जैसे शब्द तैरने लगते हैं। यानी सतही तौर पर फ़्रायड के सिद्धांतों का तआरूफ़ मिल जाता है।

मानसिक-इलाज के अपने शुरुआती तजुर्बों की बिना पर फ़्रायड इस नतीजे पर पहुँचे थे कि रोगियों को

अगर बग़ैर रोक-टोक और बेझिझक अपने ख़यालात और यादों को खुलकर बयान करने का मौक़ा दिया जाए तो उनके लक्षणों में तेज़ी से सुधार हो सकता है और पुख़्ता तौर पर राहत भी मिल सकती है। उन्होंने इस तरीक़े को 'फ्री एसोसिएशन' (विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति) की संज्ञा दी थी। इसके साथ ही फ़्रायड का यह भी मानना था कि रोगियों के सपनों का विश्लेषण करके उनके अवचेतन मन की जटिलताओं और इस बात को समझा जा सकता है कि मानसिक दबाव (रिप्रेशन) से ही मानसिक विकृतियों की शुरुआत होती है, मनोवैज्ञानिक बीमारियों के लक्षण उभरते हैं। इलाज के अपने नए तरीक़े और उससे जुड़े सिद्धांतों को उन्होंने 'साइकोएनालिसिस' (मनोविश्लेषण) का नाम दिया था। सिगमंड और साइकोएनालिसिस दुनिया में तभी से एक दूसरे के पर्याय बने हुए हैं।

बिलआखिर हम उस चारदीवारी में थे जिसकी हर ईंट सिगमंड फ़्रायड को जानती है। पहला कमरा सिगमंड परिवार का डाइनिंग रूम हुआ करता था। यहाँ खाने वालों की तादाद रोज़ ही बदला करती थी क्योंकि लंदन में रह रहे दूसरे परिजन और दोस्त अक्सर मिलने आया करते थे। आज इस कमरे में न खाने की मेज़ है और न ही कुर्सियाँ। लेकिन कमरे की वस्तुएँ और वहाँ टँगी तस्वीरें फ़्रायड परिवार की विएना और लंदन की ज़िन्दगियों के बीच का पुल हैं, दर्शक

एक से दूसरी की ओर अपनी कल्पनाओं की उड़ान में आता-जाता रह सकता है। फ्रायड को खुली हवा में घूमना और पहाड़ चढ़ना बहुत पसंद था और जब तक सेहत मेहरबान रही, वे ऑस्ट्रिया की पहाड़ियों को नापा करते थे। इस बात की गवाही देती एक तस्वीर कमरे में टँगी है। लंदन के घर में सैर का उनका दायरा घर के बगीचे तक ही महदूद था। कमरे में उनके विएना के घर की तस्वीरें भी हैं, जो मूक ज़बान में बहुत कुछ कह जाती हैं। इस कमरे में रखी अलमारियाँ वगैरह ऑस्ट्रियाई ग्रामीण फ़र्नीचर के नमूने हैं, जिन्हें आन्ना फ्रायड के विएना के घर से लाया गया है। फ़र्नीचर में लोकजीवन से जुड़ी जीवंत तस्वीरें अंकित हैं। दीवार पर टँगा माउंट फ़ूजी का पोस्टर फ्रायड के विद्यार्थी और मुरीद होसाकी कोसावा ने उन्हें भेजा था।

गृह-संग्रहालयों की चीज़ें आगंतुकों और मालिकों को एक अदृश्य डोर से बाँधें रहती हैं। लोग साथ न होते हुए भी साथ चलते हैं। ऐसे ही फ्रायड से बतियाते हुए हम अगले कमरे में पहुँचे, जिसे घरवाले 'हॉल' कहते थे। यह गलियारानुमा छोटी-सी जगह है, लेकिन उसका सामान खासी मालूमात दे गया, वह बता गया कि फ्रायड का मानना था कि वस्तुओं से लोगों के जुड़ाव के आधार पर उनके मन को समझकर उनके मनोविकारों तक पहुँचा जा सकता है। लोगों के इर्द-गिर्द चीज़ें मात्र यों ही नहीं होतीं, हर चीज़ किसी प्रयोजन से होती है और प्राप्त महत्व से जीवंत हो उठती

है।

फ्रायड ने अपने एक साथी को कभी लिखा था कि मैं कई-मंज़िला घर के ग्राउंड फ़्लोर और बेसमेंट में रहता हूँ। उनका इशारा प्रतीकात्मक घर की तरफ़ भी था। बीमारी के कारण वे लंदन के घर की ऊपरी मंज़िलों पर कम ही जाते थे। लेकिन मनोविश्लेषण में घर हमारे दिमाग़ और अंदरूनी दुनिया का प्रतीक होता है। इस सन्दर्भ में बेसमेंट है 'इदम्' – वह जगह जहाँ दबी हुई बातें, यादें, डर आदि बसते हैं; वहीं ग्राउंड फ़्लोर हमारी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी और सोच यानी हमारे 'अहम्' की जगह है। जबकि पराहम – यानी हमारी कल्पनाएँ और उन्नत विचार ऊपरी मंज़िलों में रहते हैं। चूँकि फ्रायड के काम का सीधा सम्बन्ध मन में दबी बातों, यादों और ख्वाहिशों तथा उनसे पैदा हुए डरों से था तो यह कहना ग़लत न होगा कि उनकी कामकाजी ज़िन्दगी तथाकथित बेसमेंट और ग्राउंडफ़्लोर के बीच बसर हुई और लंदन के घर में कमज़ोर सेहत के चलते भी उनकी ज़िन्दगी ग्राउंड फ़्लोर के कमरों - स्टडी, लाइब्रेरी, डाइनिंग रूम - तक ही महदूद रही।

वे उन दिनों पार्क में टहल आया करते थे, जब सेहत थोड़ी मेहरबान होती थी।

हमने अपने क़दम अब म्यूज़ियम के सबसे खास कमरे की ओर बढ़ा लिए थे। यह कमरा स्टडी कहलाता है और इसी कमरे में वे रोगियों को भी देखा करते थे - यानी वह उनका कंसल्टिंग

रूम भी था। यह एक आयताकार कमरा है, जिसकी लम्बाई उसकी चौड़ाई के दुगुनी तो होगी ही। यहाँ पर ही फ्रायड द्वारा ताज़िन्दगी इकट्ठा की गई पुरावस्तुएँ भी प्रदर्शित हैं। फ्रायड ने अपना ये बेशक्रीमती मालो-असबाब दुनिया के मुख्तलिफ़ कोनों से जुटाया था। उसकी हिफाज़त तथा घर में उनकी साजसज्जा का ज़िम्मा पूरी तरह से परिवार की सहायक पाउला फ़िक्टल पर था और उनकी कुशल कारीगरी के चलते ही लंदन की स्टडी में विएना की स्टडी और कंसल्टिंग रूम की झलक पाई जा सकती है।

इस कमरे के केंद्र में रखी है, फ्रायड की मेज़, जो उनके काम और ज़िन्दगी का मरकज़ हुआ करती थी। इस पर इतना सारा सामान रखा है कि कोई भी यह सोचने लगेगा कि वे लिखने के लिए कागज़ कहाँ रखते होंगे। फ्रायड के लिए जगह की तंगी मायने नहीं रखती थी, उन्हें अपने इकट्ठा किए असबाब से मुखातिब होकर काम करना पसंद था। पुरातत्त्व और दूरदराज देशों की संस्कृतियों के नमूने इस कमरे में हर तरफ़ आने वालों का इस्तक्रबाल करते और यह बताते खड़े हैं कि फ्रायड के लेखन और विचारों में उन्हें केंद्रीय स्थान प्राप्त है। मेज़ के साथ रखी कुर्सी फ़ौरन ही ध्यान आकर्षित करती है। फ्रायड पढ़ने में जब मग्न होते थे तो अपनी टांगें कुर्सी के हथ्थे से लटका लिया करते थे। आम कुर्सियों में यह करना आसान नहीं होता था, इसलिए उनकी बड़ी बेटी मथिल्डा ने पिता की ज़रूरतों के

मुताबिक इसका डिज़ाइन आर्किटेक्ट फ्रेलिक्स ऑगेनफील्ड से बनवाया था और बड़ई कार्ल हॉफमन ने कुर्सी को मौजूदा शक्ल में ढाला था।

कमरे में रखी हर चीज़ का अपना इतिहास है और फ्रायड का इतिहास जिस चीज़ पर केंद्रित है, वह है, आलमी शोहरत रखने वाला उनका काउच। वही काउच जिसपर लेट कर उनके रोगी अपने अवचेतन मन के राजों का खुलासा किया करते थे। यह काउच शायद दुनिया का सबसे मशहूर और मक़बूल फ़र्नीचर है। फ्रायड ने अपनी ज़िन्दगी में लगभग 500 रोगियों का इलाज किया था और उनमें से अधिकतर इस पर लेटे थे। उन्हीं रोगियों में एक थीं मैडम बेनवेनिस्ती, जिन्होंने यह काउच फ्रायड को 1891 के आसपास बतौर तोहफ़ा दिया था। उस समय फ्रायड मामूली मनोचिकित्सक हुआ करते थे। फ्रायड रोगी के सिराहने एक हरा कपड़ा मढ़ी कुर्सी पर यों बैठा करते थे कि वे रोगी को नज़र न आएँ ताकि वह मन की गहरी परतों में दबी बातों को बेझिझक खुल कर बता सके। आम तौर पर मनोविश्लेषक रोगी की बातों को डायरी में नोट करते जाते हैं, लेकिन फ्रायड यह भी इसीलिए नहीं करते थे कि कागज़ पर कलम की आवाज़ कहीं रोगी की अभिव्यक्ति की लड़ी तोड़ न दे। वे आम तौर पर दिन में आठ घंटे रोगियों की बातें सुना करते थे। हालाँकि साल 1938 तक फ्रायड की तबीयत बहुत नाज़ुक हो चुकी थी लेकिन उन्होंने लेखन और (कुछ) रोगियों को देखना लंदन में

जारी रखा था। इसी घर में उन्होंने अपनी आखिरी दो किताबें - An outline of psychoanalysis और Some elementary lessons in psychoanalysis - लिखीं। लेखन का यह कार्य अपनी ज़िन्दगी के तजुबों का निचोड़ प्रस्तुत करने के उनके अधूरे प्रयास थे। दिन-ब-दिन बिगड़ती तबीयत के चलते ज़िन्दगी के आखिरी दिनों में उनका शयनकक्ष भी स्टडी ही हो गई थी और यहीं पर उन्होंने 23 सितम्बर 1939 को इच्छा-मृत्यु का वरण किया था। उनकी मृत्यु के चंद दिनों बाद ही द्वितीय विश्व युद्ध घोषित हो गया था।

पुरातत्व विज्ञान में जिस प्रकार भूतकाल मात्र वर्तमान से पहले वाला लम्बा दौर नहीं होता, बल्कि वह कई हिस्सों में बँटा होता है; वैसे ही इस कमरे में भी गुजरे वक़्त की कई सतहें मुँह बाएं खड़ी दिखती हैं। उनके लिए उनकी स्टडी और कंसल्टिंग रूम दिमाग़ की कार्यशीलता को समझने की प्रयोगशालाएँ थीं, क्योंकि दिमाग़ में ही प्रत्येक के इतिहास की सबसे गहन जानकारी छिपी होती है। इस कमरे की हर चीज़ हमें यह बताती है कि मनोविश्लेषण ऐतिहासिक विज्ञान है। हम किसी के दिमाग़ की हाली हालत तभी समझ सकते हैं, जब हमें उसके माज़ी का इल्म होगा। एक कमरा इतना मुतासिर कर सकेगा ऐसा सोचा न था, हालाँकि फ्रायड जैसी अज़ीम शख़्सियत से चंद घंटों की मुलाक़ात से दिमाग़ को जानकारी की ओवरडोज़ तो मिलनी ही थी।

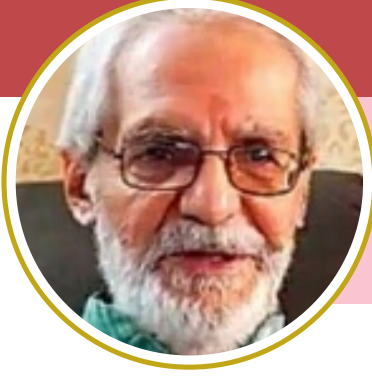
अब ज़मीनी मंज़िल से ऊपर की ओर बढ़ने की बारी थी। अब हम यह जानने वाले थे कि सिगमंड फ्रायड के परिवार के दूसरे सदस्य अपना वक़्त कैसे और कहाँ गुज़ारते थे। आन्ना फ्रायड ने ऐसा क्या किया था कि हर आने वाले का इस्तक्रबाल आन्ना फ्रायड भी अपने नाम की नीली गोलाकार प्लेट से करती हैं।

पाठको, आपको यह सब जानने के लिए पत्रिका के अगले अंक की प्रतीक्षा करनी होगी।



21/17

कुमाउँनी भाषा और लिपि का प्रश्न



डॉ. सुरेश पंत

हिंदी भाषाविद और लेखक

भाषा या बोली

बोली और भाषा में कोई स्पष्ट, तात्त्विक भेद नहीं है, फिर भी बार-बार यह बात उठाई जाती है कि कुमाउँनी (या कुमाउँनी के स्थान पर कोई भी नाम रख लीजिए) भाषा है या बोली। प्रत्येक भाषा कभी बोली रही हो सकती है और बोली कभी भाषा। इंग्लैंड में भी जब सभ्य और संभ्रांत लोगों की भाषा फ्रांसीसी का बोलबाला था तो अंग्रेज़ी को एक डाइलेक्ट (बोली) ही माना जाता था। ब्रज कभी भाषा (भाखा) थी और हिंदी की मूल खड़ी बोली, बोली थी। आज खड़ी हिंदी भाषा है और ब्रज बोली।

रूपक में कहें तो भाषा / बोली चेतन आत्मा है और लिपि उसका चोला, लिपि भाषा नहीं है। किसी भाषा को किसी भी लिपि में लिखा जा सकता है, फिर भी कोई एक लिपि उसके लिए स्वाभाविक होती है। भाषाविज्ञानी भाषा और बोली कोई मुख्य भेदक अभिलक्षण नहीं देखते। प्रत्येक कथित भाषा कभी बोली और बोली भाषा कही जाती रही है। हिंदी की 'बोलियाँ' तो हिंदी से अधिक

समृद्ध रही हैं। प्रत्येक भाषा/बोली का मूल व्याकरण उसी में निहित होता है। आपने जब ब्रज, भोजपुरी और मैंने कुमाउँनी, या दोनों ने हिंदी बोलना सीखा तो उस भाषा / बोली के सैद्धान्तिक व्याकरण ज्ञान के बिना भी हम भाषा को लगभग शुद्ध बोल रहे थे। कथित व्याकरण बाद में सीमित उद्देश्य से और प्रायः रटकर सीखते हैं।

वैयाकरण भी समकालीन भाषा उपयोग का विश्लेषण करने के बाद ही निहित नियम को पहचानकर निर्धारित करते हैं, यादृच्छिक नियम निर्माण नहीं करते। भाषा के अभिलक्षणों में लिपि गौण है। वर्तनी दोष तो लिपि सीखने के बाद पसरते हैं। हमारी हिंदी का पेट बड़ा है और पाचन सही। धरती से उपजे बोली-भाषा के या सदियों से घुले-मिले पराई भाषा के शब्दों को पचा ले जाती है। लोक के पास लुप्तप्राय शब्दों की अकूत संपदा सुरक्षित है। उसे उठा कर टेक लगाने की ज़रूरत है। भाषा की दृष्टि से गाँव बहुत संपन्न हैं और शहर दरिद्र।

भाषा जड़ वस्तु नहीं, चेतन सृष्टि है। हम भाषा को बोलते हैं तो उसे पोषण

मिलता है, बोलना छोड़ दें तो कुपोषण से धीरे-धीरे उसका मर जाना निश्चित है। हमारी भाषा जो भी हो, वह हमारी व्यक्तिगत पहचान है और सामूहिक धरोहर भी। जैसा कि कहा गया है, लिपि भाषा नहीं है। भाषा में निहित अभिप्राय को ठीक-ठीक व्यक्त करने के लिए निर्धारित कुछ 'लेखन संकेतों, चिह्नों की प्रणाली लिपि है। जब कभी मेरे कुछ मित्र कुमाउँनी के लिए मानक लिपि बनाने की बात करते हैं तो मैं असहमति व्यक्त करता हूँ। मैं प्रायः यह कहता रहा हूँ कि यदि उत्तराखंडी भाषाओं को विलुप्त होने से बचाना चाहते हैं तो कम से कम इन दो कामों से शुरुआत कीजिए; यह हुआ तो भाषाएँ जिँएँगी, वरना तो भविष्य डरावना है ही-

1. अपने घरों में, परस्पर व्यवहार में अपनी भाषा का उपयोग कीजिए।
2. प्रत्येक प्राथमिक विद्यालय में, पब्लिक हो या सरकारी, शिक्षा का माध्यम अपनी भाषा को बनवाइए और उसे किसी न किसी रूप में, किसी न किसी प्रकार रोज़गार से जोड़िए।

मानकीकरण की बात तभी उठती है जब भाषा का मौखिक और लिखित रूप में पर्याप्त उपयोग हो रहा हो। बच्चा जिएगा, बड़ा होगा तो डिज़ाइनर सूट पहन लेगा। इसी प्रकार कुमाउँनी भाषा को अभी लोगों को बोलने-लिखने दीजिए। वह जीवित रहेगी, उसका प्रवाह होगा तो कूल-किनारे स्वतः तय होते जाएँगे।

ऊपर उल्लिखित सुझावों में पहला तो शायद इसलिए गले न उतरा हो कि जिस प्रकार हिंदी भाषी के लिए अंग्रेज़ी में बोलना संभ्रांतता का लक्षण है, उसी प्रकार कुमाउँनी भाषी के लिए हिंदी में बोलना। दूसरे सुझाव का संबंध क्योंकि सरकार के साथ भी जुड़ता है और सरकार को इसमें लीपापोती कर तुष्टीकरण और वोट वसूली की संभावना भी दिखती है, इसलिए बराए नाम विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम में वैकल्पिक भाषा के रूप में रख ली जाती है।

यह सब होते हुए भी यह देखकर प्रसन्नता होती है कि अब अनेक उत्साही और सृजनशील लोग कुमाउँनी में विविध साहित्य लिख रहे हैं और स्तरीय लिख रहे हैं; कुछ पत्रिकाएँ निकल रही हैं। विविध मंचों से विविध कार्यक्रम भी प्रस्तुत होते रहते हैं। इसलिए अब कोई भिन्न लिपि निर्धारित करने की नहीं, नागरी लिपि में ही कुमाउँनी की कुछ विशिष्ट ध्वनियों के लिए संकेत निर्धारित करने की बात उठाई जा सकती है। कुमाउँनी ध्वनियों की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, हिंदी की अपेक्षा कुछ स्वनिमों का अधिक होना। देवनागरी

लिपि में कुमाउँनी की इन अतिरिक्त ध्वनियों के लेखन में एक हास्यास्पद बात यह दिखाई पड़ती है कि ह्रस्व / आ/ या /ओ/ के लिए स्वर के नीचे हलन्त का चिह्न लगा दिया जाता है। यह अवैज्ञानिक है और नागरी लिपि के नियमों को न जानने का परिणाम है। 'हल्' का अर्थ है व्यंजन। हल् चिह्न व्यंजन के साथ लगता है और यह प्रदर्शित करने के लिए लगाया जाता है कि उस व्यंजन में स्वर नहीं है। स्वर को हलन्त करने वालों को सोचना चाहिए कि वे कहना क्या चाहते हैं।

अधिक विस्तार में न जाकर यहाँ हमें यह देखना है कि नागरी लिपि किन कुमाउँनी ध्वनियों के लिए अपर्याप्त लगती है।

1. जहाँ तक पदांत अ का प्रश्न है, हिंदी में अधिकतर अकारांत शब्द लेखन में तो अकारांत हैं, उच्चारण में हलन्त। इसे भाषा विज्ञान में पदांत अ का लोप (schwa deletion) कहा जाता है। हिंदी में बिना हल् चिह्न लगाए भी हम उन्हें हलन्त ही पढ़ते हैं। राम या कमल को हिंदी, उर्दू या किसी भी बोली/ उपभाषा में राम या कमल ही पढ़ा जाएगा। संस्कृत में राम, कमल को अकार सहित राम, कमल पढ़ा जाना चाहिए किंतु आज हिंदी ने संस्कृत उच्चारण को भी दबोच लिया है और अच्छे-अच्छे संस्कृतज्ञ राम, कमल कहते सुने जाते हैं। तो कुमाउँनी में लुप्त पदांत अकार

के लिए अलग से हलन्त करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

2. अब मुख्य रूप से दो स्वर ध्वनियाँ बचती हैं - ह्रस्व आ और ह्रस्व ओ; जो अर्थ भेदक भी हैं। स्वर को ह्रस्व करने के लिए उसे रेखांकित किया जा सकता है किंतु यह टाइप करते हुए कठिन है, विशेषकर आज जब कि मोबाइल सबसे अधिक प्रचलित उपकरण है; इसके लिए चिह्न आइफोन पर गूगल की-बोर्ड में उपलब्ध हैं।





श्रीमती कमला वेदी

प्रवक्ता - शिक्षा विभाग, उत्तराखंड

हमर उत्तराखंड

हमर उत्तराखंड कै दुनिं में देवभूमि
कूनी,
सहज- सरल व्यवहाराक लोग यां
रूनी।
तेर जिल यांका राजधानी छाजी
देहरादून
देवी घाप्तों की यौ भूमि याई छ सुख
सुकून।
राणखेत, नैनीताल, अल्माड़, कौसानी
बागेश्वर,
चम्पावत, पिथौरागढ़, मुन्स्यार याई छ
जागेश्वर।
हरी भरी जंगोव सदाबहार हिमालय
यां चमकैछ
सजी -धजी धरती यांकी, सदा व्योली
बनी रैछ।
ठंडी हव, ठंडो पाणी और खेत
सीढ़ीदार
बांज बुरांश खिला, आकाश चूमनी
घार।
सरयू, शारदा, भागीरथी और याई छ
हरिद्वार
कैलाश धाम मानसरोवर याई छ बट्टी-
केदार।
ग्यूं, मडु, झुंगर, धानकि लटकी रींछ
के भली बाली

यौ रंगील पहाड़ छोड़ि छोरी, परदेश
कां जाली।

काकड़ घुरड़क घुराट सुणीं यां घुघुति
को घुरांश

वन बाग हरी भरी रुनी, रंगील चैत
खिलो बुरांश।

सातूं आठूंक, नन्दादेवीक प्रसिद्ध छ
यां म्यौल

पार्वती व्योली बनी, शिवजी बननी
ब्यौल।

मैंसो की पछ्याण कुर्त पैजाम और
टोपी

सैणीकि नथ, हार, पौंजी रंगील
पिछोड़ी।

जब उदास है जाला आया जरुड़ मेरो
पहाड़,

हूनक घाम तापी जाला, जेठक खै
जाला जाड़।

पावन पूज्य धरती यांकी नी ऊनी छल
चालाकी,

एक तका जरुड़ आया, याद आली
भौत यांकी।

यो माटी यो मुलुक

यो माटी यो मुलुक छोड़ी, दूर देश कां
जूलों

यो छ मेरी जन्मभूमि, यो मांटी
मरूलों।

हिमालय का ऊंचा डान, याई बट्टी
केदार

शिवज्यूको धाम छ यां, याई छ हर
हरिद्वार।

देवी घाप्तों की यो भूमि, छोड़ि मी
कां जूलों,

यो छ मेरी जन्मभूमि यो माटी मरूलों।

बारोंमास बसन्त छ यां, बन बाग सजी
रूनी,

बांज बुरांशक डाव बोट, सदा खिली
रूनी।

यूं बन तड़ाग छोड़ि, मी को भूमि जूलों
यो छ मेरी जन्मभूमि, यो मांटी
मरूलों।

कल-कल, छल-छल के भलौ छैलौ
पाणी,

धरतीको रंग हरी-भरी, चुनरी ओढ़ी
जैसी धानी।

यौ पावन भ को भूमि जूलों
यो छ मेरी जन्मभूमि, यो मांटी
मरूलों।

सुख-दुख उनी-जानी, उनै जानै रूनी
मरण-ज्यूनक, सुख-दुख, मिलि-जुलि
निभूनी।

यसो संग साथ मेरो, यौ दगड़ कां
मिललो।

यो छ मेरी जन्मभूमि यो मांटी मरूलों।



डॉ. दिवा भट्ट

अनुवादक और शिक्षाविद



‘साँचि हैगै हो! माया भाबर न्हैगे और भाबर जैबेर भबरीगै।

“को माया?”

“वी, जो अच्छालन फुरेड़ी रै, भाबरपन।”

“वाँ त भौत माया छन, तुम कैकि बात करनौछा?”

“वी, जैक यो गीत चलि रई।”

“गीत त हिरुलि क चलि रौछी; ‘मेरि हिरु न्हैगे रंगिला भाबर।’

“होइ, रंगिल भाबर जैबेर ऊ हिरुलि माया बणिगै। भाबरै रंगीनी में हिरुलि हरै पड़ी और माया फौरी रै।”

“एक उ लेक छी, जो कूँछी; भाबर क लम्ब बाटो मोटर चली गाड़ी घागरैकि गुनी तेरी दुंग में रैजौ साड़ी। वीक के नाम छी?”

“नामैल के करछा? जे लेहौ; भै सब एककै। उनलि घागरै गुनि दुंग में धरी, यों साड़ि दुंग में धरि बेर नाचणई।”

“को छन ऊं?”

“छन त भौत, परन्तु ऐल मैं आपणि माया कि बात करणयुं।

भलो कारबार छी हमर।गौं में सुन्दरकै खेति पाति करणौछियां। साग-सब्जी, फल, धिनालि सब घरै में है जाँछी। मैं फौज में छयूं। हर महेंण तनखा घर भेजि दिछयुं। दस-बार जणिनक

परिवार सुन्दर कै पलि जाणौछी। म्यर ठुल भौ इस्कूल जाण बैठ छ त मायाकूण लागी; उतू दूराक इस्कूल जाण में भौ कें भौत परेशानी हुणै। हमले तुमारै दगाड़ ऐजानू।”

मैल कौ, “मैं त ऐल बौडर में छुं! वां परवारकें नि लिजै सकन। त बार यसी कै चलावौ।

वील कौ;

“कसिकै चलून? ह्यून-चौमास में गाड़ पार करणि मुश्किल है जैं, गर्मिन में घर ऊण बखत घामक चेड़ लागि रूं। यतु नान भौ कसिकै जाल इस्कूल?”

“यो परेशानी त सदा की छन। हम लेक जाँछ्या!” मैल कौ।

“तब पड़ाइले भलिहुँछी, तुम लोगले ठुल-ठुलहुँछ्या। आब त इस्कूलन में पढ़ाई नै हुनि।तबै त गौक जादेतर मैंस नैल आपण नातिन बिणनागाक अंग्रेजी इस्कूल में लगैहालिन।”

आपण नानतिननकें अंग्रेजी पढ़ूणै इच्छि मेरिले छी। मैंसनैन्यात मैल ले बेरीनाग में किराय में कम्रलहीबेर द्वियै भाइनाक नानतिन् वां पुजै दान। घर में रैग्या इज-बौज्यू और भौजि। माया नानतिननकें खवै-पेवै इस्कूल पुजून, वां बैलूण वगैरै सब करिलिहच्छी,

लेकिन नानतिन दुसार-तिसार दर्ज में पुजिनत उनर होमवर्क करूण कठिन है पड़ौ। किताब सब अंग्रेजी में भ्या। हिन्दी में हुना त माया पढ़ाई लिहिनि। तिमाही परीक्षा में भतिज फेल है पड़ौ। तब माया ट्यूशन लगूणैकि जिद्द करणबैठी। मेरि तन्खा इनारै ऊपर खर्च हैजाणैछी। “त्वील घर डबल भेजण बन्द किलै करिन कै इज-बौज्यू उसी कै ओलाण करणौछी। ऊं घर बै साग-पात, फल, दूध-दैं; जेले भ्यो; बजार पुजै ऊँछी। घर हीं चिनि-चहा, साबण-हाबण जसि बजारैचीज लूण ही डबलै नि हुछी। फिरले ट्यूशन लगूणै कि मजबूरी हैगै। जसिकै-तसिकै द्वियै जागनक खर्च चलूणौ छ्यां।

जब तक हमार नानतिन हाईस्कूल-इंटर करिबेर कौलेजा बाट चाण बैठिन, तब तक हमर आदुक है जादे गौं खालि हैगोछी। जादेतर मैंसनैलि बेरीनाग में जाग लहीबेर वैं मकान बणैहैछी। थ्वाड़ सालन तक ऊं वैं बै ऐ-जैबेर गौंकि खेति संभाल नैरौ छी, फिर बानर सब चौपट करि दिनी कैबेर खेति-पातिले छोड़ि हैछी। कैले-कैले पछा बेरीनागले बेचि द्यो और हलद्वाणि लहील्यो। कैले गौं बै सिद्ध हलद्वाणि

फटक मारी। मैं जबले छुट्टी में घर जाँछुं; हर बार गौं छोड़नेरनाक् नई-नई नाम सुणछुं। वां आब भेट-घाट करणहीले द्वी-चार मवासि सिवाय क्वे नि मिल छी। माया बड़ि खुशि है बेर एक-एकक पुर विवरण सुणै दिनेर भै; को-को गइन, कब-कब गइन, हल्द्वणि में कैल कां ल्ही राखौ, कतु में ल्ही राखौ; वगैरै-वगैरै। बतूण बखत ऊ यस मुख बणूनेर भै जाणि हल्द्वणि क्वे खाणैकि चटपटानिचीज छु; जैक नाम पर सबनैकि लार बगणै।

“हम ले ल्हीलिनू।” एक दिन वीक खाप बै निकलीगै। वीक बाद बातचीतन में जब ले कै क्वे जिगरआय, वी में ऊ यतु जोड़ी दिनेर भै; “एक नान-नान प्लौट हमर ले हुनोत कतु बड़ी हुन!” फिरि त एक किसमै कि रटनै लागिगै। आखिरकार फंड बै रूपैं गाड़ि बेर मैल ले एक टुकुड़ ल्हील्यो। रिटायर है बेर पैली मकानै बणा और हम ले भाबरी है गयां। आसपास सबै पहाड़ि छी। तुरन्त जाण-पछ्याण हैगै। त्यार-बारन में पैण-परसाद बाटणक रिवाज यां ले गौं कै जस छु। सबै पहाड़ा खेतन में जामी बिन जावांक श्यारन बैउ पड़ि बेर यांक श्यारन में दुबार रोपी रौछी। खूब पनपणौछी। सोसायटी में द्वी परवार माया कै मैताक छन। वाँ ऊँ तेदिनी छी, याँ बार दिनी जास खास है गई। एक वीक मैतै कि चेलि बेटि छु, मनीषा। वी दगाड़ माया कि पक्कि दोस्ती हैगै। बजार-हजार जाँ ले जाण हुँछ, दगाड़ै जानन। हल्द्वणि में म्याल-कौतिक, नुमाइश, महोत्सव

वगैरै है ते रूनन। मैं कें यैक बार में जादे पत्त नि हुन, पर माया इनारन दगाड़ सब जाग पुजि रूछि। एक इतवारा दिन सबना दगाड़ याँक सब से ठुल मौल में जाणै कि ठरि। वाँ जैबेर माया रणी गै; “इताणि ठुलि दुकान? सब्बै सामान एकै भितेर? ऊ ले यतु भल-भल! जाते ही मनीषालि हमनकें ले एक ट्रौली पकड़ै बेर बताकि घुमते जावौ, जे-जेल्हिण छुं; यै में जाम करते जावौ। हम त एक-द्वी चीजै लिणैकितें जै रौछ्यां; घुमन-घुमन ट्रौली ठसाठस भरीगै। किसम-किसमाक साबण, क्रीम, शैम्पू, भान माजणी जुन, घरै कि सफाई करणी झाड़ू, ब्रश, प्लास्टिका डाब, पिसी मस्याल सब जाणि कतु-कतु नमुनाक छी। और त और, आद और लासणले पिसी-पिसाई मिलणौछी। भान कुन, खाणै चीज, पैरणै चीज! अहा! हा! कतु-कतुनमुन! के चीज घर में जरवत छु कैल्हे, के (जरवत नि भै फिर ले) हमन थें ले हुणचें कै लीहालि और के-के चीज एका दगाड़ दुसरि फोकट में मिलणै कै ली हालि। आइ मैं कूणै में भयुं, कि ‘यो हम मिलिट्री कैंटीन बै ल्हीऊल’, पर वी कें सुणनैकि काँ हरैछी!

एक बात और भै। मौल में आई स्यैणिनमें बै द्वी-तीन स्यैणिनैल साड़ि पैरी भै। बाँकि सबा सब सलवार-कमीज या पेंट-जीसं पैरिबेर ऐरौछी। उनार बोलाण और हिटणै चाल आफी बतैदिणैछी कि यों पहाड़ाक डान-काननाबीचा क क्वे पिछड़ी गौं बै यां पुजिरई और यां ऐबेर घागरि-साड़ि ढुंग में धरिबेर मौडर्न है गई। बेरीनाग

में रूण तक मायाले साड़ि पैरछी। यथकै-उथकै जाण में तथा गौंपन जाण में ख्वारक पल्ल ख्वारै में रूछी। यां आई बाद वीक मनले सलवार-कुर्त तरफ न्हैपड़ौ। मौल में द्वी कुर्तना दगाड़ तिसर मुफ्त में मिलणौछी। मैं जभत पिस्युं-चावला थैल ल्हिणहीं दुसरि तरफ गयुं, वील झट्ट तीन कुर्त और पैजाम छांटिबेर ट्रौली में धरि द्या। मैं लाइन में लागिबेर जब सामानक बिल बणूण बैठ्युं त उतू सब चीजनकें चाइयै रै गयुं। के-के सामानत मैं ल उती लै हटै दे। म्यार पास उतू डबलै नि छी!

तीन-चार महेंण बाद एक दिन मायालि कौ, “आज दिन में मैं मनीषा दगाड़ किटी पार्टी में जूल हॉ!”

“किटी? तू कि करली वाँ?”

“जी और कराल वी मैले करुल। ऊँ सबै त हमेशा जानन!”

“आफी जानी पैं। जाँ-जाँ ऊँ जानन वाँ-वाँ सब जाग हमर ले जाण जरूरी जैकि छ?”

“महेंण में एककै दिन त जाण हुँछ। सबै मैं थें कबै बटी कूर्णई।”

“के-के कणई?”

“कूनी कि रोजा रोज परिवारै कै लिजी खपि रूछा, एक दिन आपुण लिजी किलै नि निकालना?”

“अच्छा! घरक काम करण में ततु आफत छु? मैकें सब पत्तछु। यो किटी-फिटी, पार्टी-हार्टी सब अमीर लोगनाक् चाड़-माड़ छन। जनरि पास निमखण डबल छन, निमखण बखत छु, ऊँ जानी यसि जागनमें। त्वे थें ततुकै टैम छ त घरै में के और काम किलै न करनी? घराक् अघिल-पछिल

यतु जाग खालिछु। के साग-पातै लगूनी। सिणाइ-हिणाइ के काम सिखि बेर वी करनी। द्वी डबल हाथ में ऊनात हमर हाथ ले खुलन।”

“है ग्यो हाइ! एककै दिन जाणा लिजी कौ, वी मेंले यताण लैक्चर दिणौ छा।”

“मैलि तयार खुट जैकि बादि राखिन! जा, जाँ जाणचाँछे।”

उ दिन फिर घर में अबोल रौ। थ्वाड़ दिन बाद वीलअधिल-पछिल खोदि बेर साग-फूल वगैरै लगैहालि। एक दिन जब सही मूड में छी; मैल चिड़ै; “किलै, किटी में जाणी छी, किलै नै गई?”

वील गुस्स जस देखै बेर कौ; “तुमलि नै कौ, फिर कसिकै जाँछ्युं?”

“मैल नै काँ कौ?”

“जतु सुणा, वीक मतलब नै ई हुँछ।”

“तू समजनी किलै नै? यों सब बातनक अन्त कभै न हुन। एक-बाद एक के नै के लागिगै रुँछ। आज कौल वाँ हिट, भोल कौल याँ हिट। वाँ जानूँ, यस करनूँ...भागी, हमरि उसि हैसियत नि भै। एक मामुली पेंशनलि में घर क खर्च जै पुर करुं या तयार नई-नई शौक? नानतिननाक खर्च अलग छन।”

“मैल तुमनथें डबलनैकि तें कौ छै? तुमनथें नि मांगु। मेरि पास जो आपुण जाम करी छन, उनलि है जाल।”

दुसार महेंण ऊ किटी में गै, बनि-ठनिबेर गै। वापिस आई बाद वीक खुट भी में नि पड़नौछी। हाउजी, तम्बोला-हम्बोला जाणिके-के खेलिबेर, मायाक हाथ-खुटनै चड़क

गायब हैगे। वीक बाद हर महेंण अलग-अलग फैशनैकि साड़ि पैरण जरूरी हैगे। वां बीच-बीच में ड्रेसकोड लागू है जां। कै फ्यार सबै पिंहलि साड़ि पैराल, कै फ्यार हरी। माया थें साड़ि कम नि छी, लेकिन ड्रेसकोड वालि नि छी, तो लाल-हरी-निलि-पिलि-गुलाबि सब ल्हिण पड़िन। साड़िन दगै उसै चुड़-माल-बुन्द वगैरै ल्हिण ले जरूरी हैग्यो। हर महेंण ब्यूटी पार्लर में जाणले जरूरी है ग्यो। ख्वाराक् बाल काटि नौरन में फिचालि हालि। ‘इज देखली त अपशकुन करि हालिन’ कौलि कै मैं मनै मन डरनेर ले भयुं, परन्तु बनि-ठनि बेर जभत सामणि आई त मैं कै ले औरी भलि लागनेर भै। मन में अभिमान ले है जाँ कि हमले के कम न हात्यां। मेरि स्यैणि ले कतू इस्मार्ट छु, एकदम मौड़न। ठुल आदिमना स्यैणिन दगाड़ पार्टी में जाँछि।’

किटी में हर महेंण जाम हुणी चार-चार हजार रूपै नै कि लौटरी में जै महेंण माया ना मैकि पर्ची खुली, उ दिन त वीक खुशीक के ठेकाणै नि छी। अड़चालीस हजार एक बाटै हाथ में ऐग्या। पचास हजार में द्वियै कम।

“आब घर में एक वौशिंग मशीन लिऊनू।” वील आफी कौ। मैले खुशि है गयुं। फ्रीज और मिक्सी मैल मजबूरी में किशतन में ल्ही राख छी। किशत आजि भौत बचिरौछी। वौशिंग मशीन लिण हीं दुकान में गयां त वां सामानै चमक-धमक देखि मायाक मन और ले ललचैगे। वां दीवाल में टांगणी ठुल-ठुल टेलीविजनन में चै बेर हम द्विनैकें हमर घरक

टी०वी०भौत नान और पुराण जस लागण बैठौ। ठुल पर्दवाल टी०वी०नैकि कीमत पुछण पर हम द्वियै चुप्पैगयां। एक टी०वी० में ततु खर्चणै कि हिम्मत द्वी नैकें नि भै। दुकानदार हरेक सामान देखै-देखै बेर उनरि भौतै तारीफ करणौछी। अन्त में खालि खाण गरम करणी एक सस्त माइक्रोवेव ओवन वौशिंग मशीना दगाड़ घर पुजिग्यो। माया हमन हीं एक-एक जोड़ि कपड़ना दगाड़ द्वी-चार नई फैशना सूटआपुं हीं लैगे। मैल के न कौय। वीकै डबल छन, आफी खर्चै। धीरे-धीरे पत्त चलौ कि किटी डबलनैल तारि धूल कै ऊ पेंच-उधार ले करणैछी। घर क खर्च बढ़ते जाणौछी। मेरि एक पेंशनैल कि हुँछी? रिटायर हई बाद मकान बणूणै मेरै गयुं। पुर द्वी साललागिन। उपनल में नाम लिखैराख छी। आजि तक म्यर नम्बर नि ऐरौछी। वाँ ले बार-बार चक्कर लगूण पड़नन। कती खालि जाग भै लेक त जाण-पछ्याण वालनै कि बारि पैली ऐजै। मैलि ले कतू लोगना सामणि हाथ जोड़िन तब आखिर में एक बैंक में गाड़ैकि नौकरी मिलिगै। पेंशना रूपैन में नई तन्खाक डबल मिलै बेर ले पुर पड़ण कठिन हैतेगे। नानतिनन क पढ़ाई खर्च बढ़ते जाणौ छी। ऊं कम्प्यूटर ल्हियौ कै अलग पछिल लागि रौछी। पड़ौसीना स्टैंडर्ड मुताबिक हमार घर में ले नई-नई सामान धरण जरूरी छी। माया पड़ौसी स्यैणिना दगाड़ तीज और करवा चौथ जास उं तयार ले मनूण बैठिगै; जनर हमलि पैली बै नौले नि सुणिराख छी। हरेक बखत नई-नई खर्च।

भले ही ऊं सब ले हमरि न्यात पहाड़ाक् क्वे डान-कान या गाड़-गध्यार बै यां रूण हीं ऐरौछी, लेकिन यां ऐ बेर सबै पुर परवारा क्व हैप्पी बड़े और आपुण ब्याकि सालगिरह मानूणी बणि गई। (मैं कणित आपण ब्याकि तारीखे याद नि छी।) सबना सालगिरह-जनमबार में भेट-गिफ्ट ल्हीबेर जाणले जरूरी हैग्यो और आपण घर में ले यो सब मनैबेर सबनकें खाण हीं अथवा चहा-पाणि हीं बोलूण जरूरी है पड़ी। आब कां बै बचनी ठेपु? कां बै बचै बखत?

पोरुं एक नई बात भै। मैं ड्यूटिबै घर आयुं त माया नि पुजी भै। फोन लगा, उ ले नि लागि। फिर मैंल मनीषाक घरवालहीं फोन करौ। वील बताकि मनीषा घर ऐगै, माया कै दुसरिकि गाड़ि में ऊणै। ऊ करीब आदु घंट बाद पुजी। तब तक मेरि साँस अटकी भै। खूब रीस ऐरै छी, लेकिन ऊ खुदै कैल है बेर भितेर कै ऐछ। देखि बेर मैं चुपै रै गयुं। ऊ झट्ट कपड़ बदलिबेर रस्या तरफ दौड़ी। खाण बखत मैंल पुछौ; ‘आज ततु देर किलै भै?’

“आज शालिनी दिदिलि कौ म्यार दगाड़ हिट। मैं ले बैठि गयुं। ऊ पैली गीता कें लामाचौड़ पुजुण ही गै, फिर कुसुम कें कुसुमख्याड़ उतारिबेर अघिलकै आयां त वां जाम लागिरौछी।”

“पार्टी कां छी, ?”

“काठगोदाम तरफ एक ठुल मौल में।”

उनरि पार्टी हमेशा अलग-अलग होटल में हुछी। ऊण-जाणक दगौड़ छनै छी।

मैंले खुशि छ्यूं कि माया जसिकै नान-ठुल हरेक कामा लिजी कैले जाणभयो त मैंथें ‘स्कूटी में पुजैदी’ कूछि; उसिकै किटी में पुजुणैजिद नि करनि।

“तू मैं ही फोन करि दिनी, मैं ऐ जान्यु स्कूटी ल्हीबेर।”

“नै, नै। स्कूटी ल्ही बेर वां जन आया।’ वील साफनै कै द्यो। रात सितण बखत कूण बैठी;

“एक बात कूँ?”

“कौ नै।” मैंल कौ।

“नै त नि कौला?”

“नै किलै कूल! तुकौ त सही।”

मैंल सोची, लांछा ल्हिणैकि तें कूणै। पैलीले एक-द्वी बखत कै चुकिगै। भौत अकर त नि आ। मैं मनैमन सोचणौ छ्यूं। वीलि भूमिका बणूण शुरू करी। “हमेशा इनरिन गाड़िन में जाण पड़ौं। भल जस नै लागन। आज ले उतू देर है पड़ी। जैकि गाड़ि भै, ऊ जथकै लि जाल, उथैकै जाण भैं। हम के कैजै कि सकनू?। ऐसान अलग।” “कैले के कौछै?”

“नै, नै, कौल किलै? उनरि गाड़िन में जाग हुनैरै भै। मैं कणी शरम लागैं। कबै-कबै लाचार हैबेर जस चै रूण पड़ौं, धैं कोकू म्यार दगाड़ हिटकै।”

“तो छोड़ि किलै न दिनी? ततू जरूरी जैकि छ?”

“मेंबर बणी बाद अदबीच में नै छोड़ि सकीन।”

“तो तू रिक्श-टुकटुक में किलै न जानी? यतु दौड़ते रूनन हर सड़क में!”

“तुमले कसि बात करछा? सब

‘ठुलि-ठुलि कारन में ऊनी, मैं रिक्श-टुकटुक में?’”

“तो मैं पुजै धुल स्कूटी में।”

“ना, ना, तुम जन आया, मैं कैं शरम लागें। और फिर तुम कबै ड्यूटि में भया, कबै कती, मैं तुमन कें चै रूल्वे?”

“तो करनू की?” मैं कें खुचांग लागि पड़ी।

“हमले आपुणि गाड़ि ल्ही लिनू।”

मैंलि आपणि खोरि पकड़ि ल्हे। वीकि उज्याणि पीठ पल्टै बेर पड़ि गयुं। ऊ ले थ्वाड़ देर डाड़-हाड़ मारि बेर पड़ि गै हुनेलि। सकसकाट सुणी रौछी। रस्तै रिसैबेरअबोल हरैछी। मैं ले अबोलै रयुं। चुपचाप खैबेर ड्यूटि में न्हैगयुं। ब्याल कै ले घर जेबेर वी थें कि कूल कै असमंजसै में छ्यूं। बाट में पर्वतीय उत्थान मंच बै लाउडस्पीकर में पहाड़ि गैण सुणी रौछी। मैंलि स्कूटी उथैकै मोड़ि दे।

पर्वतीय उत्थानमंचाक् खुल रंगमंच में ‘घुघुतीजागर’ वाल हुडुक बजूनै गैण लागिरौछी:

“माया-मायाझन कये, मया न्हैगे भाबरा।

भाबरा जाइबेरा है गैछ भबरीला।

माया-मायाझन कये, माया न्हैगे भाबरा।”

मैं चाइयै रै गयुं, सुणनै में रै गयुं। यो कैकि बात करणई? मेरि मायाकि बात इनन कैं कसिकै पत्त चली? यां क्वे और माया ले छनै?”

उतकै में कुर्सीन में बैठी भौत लोंड-मोंड ठाड़ है बेर गैनेरनाक् दगाड़

Purnima Varman

Author, journalist & digital pioneer
 Founder of Webportals Abhivyakti &
 Anubhuti
 purnima.varman@gmail.com



आपुंले नाचण-गैण लागीं। फिर चेली
 और स्यैणी ले हाथ उठै-उठै बेर
 नाचण बैठिया, मैं ले नाचण बैठ्युं।
 यस चितूणौ छ्युं, जाणि मैं म्यार गौक
 डानन में डोलीणयुं और मेरि माया में
 कैं छोड़ि बेर भाबर न्हैगे।आब वां जै
 बेर भबरीगै।

“माया ल्हैगे भाबरा, मैरैग्यो मलाल
 ला।”

जोरैल गैणौ छ्युं। तब तक एक दगडु
 ऐ बेर म्यार कान लै कून बैठो; “तौ
 कै मायाकि बात करणई?”

“मेरि मायाकि, जो म्यार घर में
 बैठिरै।”

“तेरि घरवालि क नाम मायाजै के
 छु?”

“मायाई समज नै यार!”

“माया की माया में, सब हेंगी
 रंगीला। माया-माया झन कये, माया
 न्हैगे भाबरा।”

गैन-गैनै वीक हाथ पकड़ि मैं ले नाचण
 लाग्युं।



The first group was about to end their presentation. Ah! That meant she could finish her coffee with ease. Waving a quick good morning to her lecturer, Ms. Ana Gavassa, she started rehearsing her presentation in her mind. In the opposite auditorium, Sahar Masood, her teammate, was busy connecting the projector to the laptop and getting ready for their presentation. Sakshi's appearance relieved him.

“Is everything OK?” Sakshi asked.

“Akeed—yeah,” Sahar Masood replied with a thumbs-up.

After the first presentation had finished, Ms. Gavassa returned to her office for a five-minute break. Sakshi and Masood's presentation was to follow.

The presentation went well. The newly added SVG graphics were amazing.

Masood had managed to find these in the French library overnight and had converted the text into English; the SWAF movie at the end made a real impact. Masood had done a great job, and to top it all, Sakshi's English was clear and impressive. The opposing team attacked them with questions, and Sakshi replied with eloquent and thought-provoking answers. Ana Gavassa was happy: Sakshi had won the battle. Sahar Masood high-fived Sakshi. The dangerous parts had been Masood's responsibility and Sakshi's job was to ensure that the presentation had an impressive impact—they had planned it all. Both of them had nailed it.

Sakshi wanted to stay back and thank Masood; it was because of him that they had done so well. She wanted to help him clear

up, but suddenly, leaving Masood in the classroom with all the packing up, she walked outside.

It was an ordinary morning at the American University of Sharjah. Every day, aspiring to make the world a smaller place, teachers and students came together to try to eliminate barriers of language, cuisine, lifestyle, and every other possible cultural divide. Some students went inside the canteen for a quick snack. The next two groups were preparing for their presentations, and those who had finished were sitting outside chatting on a bench.

It had been a successful morning. So Sakshi thought it would be a good idea to pick up her favourite movie on her way back home.

Slowly climbing down the stairs, she reached the parking area. Suddenly, she remembered that today there had not been any parking available in her department's area. Perhaps the third-year students had some

function and had occupied all the parking spaces. She had needed to park her car a few metres away and walk the rest of the way. She reached the car, a Jaguar, turned on the engine, and drove off, leaving through the university's main gate.

Driving the Jaguar, Sakshi felt as though she were flying. Fast-moving, it felt like a dream—the flight of her life. She aimed to fly in every aspect of her life. Flying was in her blood. She wanted a flight that would leave everything behind, a flight out of this world where no one could reach except her, where only she existed... That was why she had completed her 50-hour driving course in just 30 hours; within a month, she was the proud owner of a driving license. Mr. Sandeshmal was smart enough not to allow Sakshi to drive a car for the next three months. As a rule, if someone has an accident within the first three months of procuring their driving license, their license is cancelled, and they have to retake their tests.

People say that in the Emirates, buying a car is cheaper than procuring a license. To get a driving license for the second time meant shelling out another AED 5,000. Mr. Saraf was a rich man, but not so rich that he would make his three kids spoilt brats. He knew how to raise worthy children, and his two elder sons had settled down in America. After three months, he gave Sakshi the best luxury sedan that he could afford. Sakshi was one leap closer to embarking on her flight—a Jaguar's aggressive leap.

Sakshi was driving the Jaguar down a wide, vacant road. Her mind was now free of all the pressure of exams. In her haste, she had not had anything to eat that morning. From the dashboard, she picked up her mobile phone and dialled her home number.

“Mum, I'm starving! Can you cook some Rajma Chawal? You know it's always been my favourite!”

“How was the test, sweetie?”

“Superb!”

As the needle on Sakshi’s speedometer rose past 120 km/h, her mum heard the warning beeps.

“Are you talking on your mobile phone again while driving? I told you not to.”

“Oh, come on, Mum! There’s no surveillance camera in this area. OK, I’ll hang up now.” And Sakshi disconnected the call.

Sakshi knew very well where the speed cameras were and where she could drive without worrying about getting a fine. She had to take care, because her dad would pay the fine, but not without giving her a long lecture.

After about 300 metres, the road turned into a motorway. A blue noticeboard signalled the turning. Sakshi looked to both sides of the road and then turned onto the motorway.

But when she reached home, she started to worry. Though she had rung the doorbell repeatedly, no one opened the door. Frustrated, she started banging on the door. Even then, there was

no response. She took out her mobile phone and dialled the landline number. She could hear the phone ringing inside, but no one picked it up.

Dad is supposed to be home for lunch at around this time, Sakshi thought, and just a few minutes ago I spoke with Mum. What happened?

Sakshi lived in a twenty-one-storey building with two penthouses on the top floor. One belonged to Mr. Sandeshmal Saraf, and the nameplate for the other flat read ‘Dr. Valery Kolotov and Dr. Yulia Kolotov’. They were an old Russian couple who had been resident surgeons at Zulekha Hospital for a long time. They spent most of their time at the hospital, so their house was silent all day long. Their house key was left with the cleaning staff, who usually came for an hour or so around noon. Just then, the door opened and Ali, with his favourite melody on his lips and a vacuum cleaner in his hands, came out.

“Hey Ali! Have my mum and dad gone somewhere? No one’s answering the

door!”

“Mrs. Saraf is inside, Madam. I handed her a packet of rajma just half an hour ago.”

“I wonder what’s wrong! I have been ringing the doorbell for the last 15 minutes, and I’ve banged on the door a zillion times, but there’s still no answer. I’ve even called the landline, but no luck with that either,” she gasped.

“Have you come to meet Madam Saraf or Ms. Sakshi, Madam?” he enquired.

“What nonsense! Can’t you recognise me...? I am Sakshi!”

“Oh, so your name is Sakshi too? Wow! Sir and Madam Saraf also have a daughter named Sakshi. She went to university this morning. She isn’t home yet. Are you a college friend of hers?” he asked.

“How long have you been working here?” she asked in a frustrated whisper.

“For two years, Madam,” he replied.

“So, how can you forget a face that you’ve been seeing every single day for

the last two years? I leave for university in the morning, and by noon you've forgotten my face! Don't you get it... it's me! Sakshi! Can't you see it's me! It's me, Sakshi!"

Seeing Sakshi's reaction, Ali was a little scared. He stared at her from head to toe and murmured to himself, "You are not Sakshi."

"Let me ring the doorbell. Mr. and Mrs. Saraf must be inside," he said with a firm yet shocked voice. Ali rang the bell once, and the door opened. It was Sakshi's dad.

Nearly in tears and a little angry, Sakshi entered the drawing room without saying anything. She passed the dining table and sat on the sofa.

"For God's sake, Dad! I have been banging at the door for half an hour, ringing the doorbell, calling on the landline, and you never answered! You guys scared me to death!"

He maintained a neutral expression, then his brow lifted in surprise. "You are calling me Dad?" he said.

"Yes, I'm of your father's age for sure, but whose house did you want to go to? Who do you want to meet?"

"Don't be silly, Dad! I have come home and I'm talking to you, my one-and-only Dad. My test was excellent today."

"Very well, dear. Are your parents staying in the building too?" Mr. Saraf asked her politely.

"What are you saying, Dad? Don't you recognise me? It's me... Sakshi! Your one-and-only daughter Sakshi!" She broke down into tears and couldn't say anything further.

"Hey, Kalindi! Come and see who is here." Mr. Saraf went inside, calling his wife. "This young lady appears to be from a good family, though she's saying strange things and seems to be mentally unstable. God knows where she wanted to go and where she thinks she has ended up," sighed Mr. Saraf.

"She didn't say where she came from?" asked Kalindi.

"No, she insists that her name is Sakshi, and is

calling me Dad."

"How does she know Sakshi? Maybe it's a friend of hers who's visited before."

"I don't think so. Why don't you come and talk to her?"

Sakshi clearly heard the muted conversation as she sat in the drawing room. She was tired, hungry, and heartbroken by this strange treatment—and in her very own home!

"Oh God, what are they thinking? What the hell is happening here?" she whispered to herself. She felt a strong urge to run to her room, hide her face in the pillow, and cry her heart out. She got up and started walking towards her bedroom.

"Where are you going, my dear?" Sakshi's mum came out and stopped her.

"I want to go to my bedroom, Ma. Please stop bothering me. Is this some kind of prank you all are playing on me? It's NOT funny, so please stop it right now. Please! How many times do I have to tell you? This is IT! It's just me! I AM your daughter,

you both are my parents!” Oh! There is indeed something wrong with this poor girl, Kalindi thought, wiping her hands on a kitchen towel.

I hope we don't get into any sort of trouble, thought Mr. Saraf.

“You are right. This is Sakshi's room, but she isn't home yet!” Kalindi tried to stay as calm as possible.

“That's enough! I've HAD it! This is the absolute LIMIT!” Sakshi was once again heartbroken. She burst into tears. What had she done wrong? What was wrong with everyone? What was the matter? What could it be? She was really worried. Had her dad found out about that day last week when she had bunked off her classes and gone for a day out with Jimmy to Umm Al Quwain? It was just to pass the time; she did not have a serious relationship with Jimmy, but she had, as a result of all the texting and chatting on their mobile phones, ended up spending a whole day at Umm Al Quwain with him.

She knew that her dad had already arranged her marriage to another boy. She had chosen him as well. Then... then... how could she have run off with Jimmy for a full day? Shit... why did she do these things? She didn't know... Sakshi couldn't figure anything out. If she had thought about it, she would have never done it in the first place. She knew that her dad would kill her if he found out. But he didn't seem angry. Was he taking revenge in this silence? Was he planning to disown her? If so, what would she do? Where would she go? Had her dad taken such a step without a word to warn her?

Her pulse accelerated in fear. Somehow she controlled herself. No... no, this couldn't be happening. Her dad might do such a thing, but her mum... her mum could never behave indifferently towards her. She could never act like this, with anger growing on her face. Then what had happened to all of them? Sakshi's face was completely drenched with tears, but

her mum and dad, instead of consoling her, were standing there like strangers, shocked and helpless.

“Don't you recognise your daughter? I am Sakshi... Sakshi...”

“You are not Sakshi.”

“I am Sakshi, I am your daughter Sakshi!” She stood her ground, looking her mother straight in the eye.

“No... you aren't at all,” her mum said in a soft tone, continuing to act like a stranger.

“I just called you from my mobile phone to say that I was hungry and to ask you to please prepare some rajma chawal for me, and hearing my speedometer beep, you even scolded me.”

“Were you in Sakshi's car at the time?” Sakshi's mum asked, doubtfully.

Mr. Saraf quietly got up and sat down on a sofa slightly further away. Lines of tension surfaced on his face.

“Please just tell me what you want? Why have you come here?”

“Oh, now you are talking to me like I’m a blackmailer. Why am I here? This is my home! Where else am I supposed to go?”

“This is not your home, and we do not know you,” Kalindi said gently. “It’s getting dark now. Try to remember. Tell us your address. We will try to help you reach home. It’s not advisable to wander alone around the roads in the dark. If you wish to go, you should do so right away while there is still light outside. Think about it...”

“Oh Mum... where am I to go? There is no one else I can go to other than Dad and you!” Sakshi couldn’t say anything else. Her voice choked. She started crying inconsolably, covering her face tightly with her palms.

Mrs. Kalindi continued her kitchen chores, and Mr. Saraf opened up the newspaper. No one paid any attention to Sakshi. Seeing the darkness falling, Mrs. Kalindi got a bit worried. Seeing her mum worried, Sakshi wiped away her tears. She

got up quietly. She walked as if exhausted, opened the door, and reached the lobby. She pressed the lift button. Going downwards, the lift stopped at one floor. Shibu, who lived on the 14th floor, entered the lift. A student in her third year at school, Shibu looked at her like a stranger. Shibu, who never tired of calling her ‘sis’, stood there quietly all the way to the 1st floor. Sakshi began to think that she wasn’t really Sakshi, and her legs started trembling. Walking past the supermarket on the first floor, where she purchased her food every day, no one recognised her.

She walked towards the seashore. The white birds that had migrated in winter were enjoying their routine. She sat down on a bench. She felt disconnected from everything: the materialistic world, her family, the city, the earth...

All of a sudden, she found herself weightless, lighter than air... She was relieved of emotions, had no pain in her heart, no tears in her eyes, and no restlessness in her mind.

As if she were a kite, as if someone had cut her strings. She felt as though she were flying with a big group of white cranes, just like them, swimming in the air... One of the cranes turned back its long neck to look at her, as if it recognised her. Oh! They all recognised her, all of them. Where had she come from, and where was she flying to? She kept on flying... flying, flying far... far away... no one knows how far away... no one knows which way... just far... far... far away...

Next day in the local newspaper, Gulf News, there was an article. The previous afternoon there had been a fatal accident between a car and a truck on the junction of the main road to the American University of Sharjah.

Whenever there is an accident on the roads of the Emirates, the police do not take more than ten minutes to clear the traffic. The ambulance arrives, the road is cleaned, and the insurance paper is issued in no time. Wrapping up all his belongings after the presentation, Sahar

Masood was on his way back home when he saw Sakshi's wrecked Jaguar on the road. For a minute, his heart almost skipped a beat! A girl was lying on the stretcher. The stretcher was being taken to the ambulance. Was she dead or alive?

Masood had crossed over to the scene within a minute or two. Bystanders are forbidden from stopping at the scene of an accident unless the police themselves call for assistance. He couldn't remember Sakshi's license plate number. Even then, he tried to look at the yellow-taped scene from all the mirrors of his car for as long as he could. He even managed to get a glimpse of the girl's face, but it was beyond recognition. He tried repeatedly to get a better look, but failed.

Sakshi wasn't an old friend. It had only been a few months since their admission to the university. Arabian and Indian students didn't usually hang around together, and it had only been a week since they had formed their team for

the presentation.

A memorial was organised within the department. "Good teachers always want to see their students rising high on the ladder of success, not departing like this," Ana Gavassa said in a choked voice during her speech. Her friends had tears in their eyes, but Sahar Masood broke down completely. In the canteen, his friends continued trying to console him.



55/17

अंग्रेजी साहित्य Facing the Music



Yogacharya Dhananjaya Kumar

Writer, playwright, master
yoga teacher/ therapist, film
producer, social entrepreneur,
cultural activist
dkyoga@hotmail.com



Music is part of our daily life. We enjoy our connections to music: listening, singing, professional concerts, festivals, family events, celebrations, prayer, worship, seasons, and of course in films. Music is in the air too - literally, blasting vehicles, on rooftops and dance floors. I recall in school days, particularly exam days, we were forced to learn how to transform

distraction into concentration.

We live in a vibrational universe. The whole manifest existence is a play of energy vibration. Organized or structured vibration is what appears as material form and shape, including ourselves. Vibration causes nothing to become something. This primordial vibration, a soft humming sound, is omnipresent as what scientists call 'cosmic background radiation'. Many scriptures proclaim that sound is the original act or fountainhead of creation. And music is vibrational sound - not random but arranged in a variety of patterns. Vedic Hymns were in effect the early form of praise or prayer to nature. And certain texts were the first musical compositions, although with fewer notes than the present octave.

According to sage Bharata's 'Natya Shastra' - a treatise on fine arts including music, dance, and theatre - there are four basic criteria for excellence in rendition: craftsmanship or

knowledge of the art form, passion, and creativity for mastering the chosen art, entertainment of the audience, and educational content or message of the artist. It appears that the primary focus of 'modern music' is on entertainment, although the other aspects are not completely ignored. Luckily, there are still many accomplished classical musicians around, and many popular artists have some grounding in classical music.

In this age of consumerism, fuelled by technological advances, have heightened the lust to extract the most out of life, by filling it with objects and fantasies. More of everything is seen as a means to enjoy life, more so than living a meaningful life to be able to enjoy things produced by technology. This has shrunk the timescale of experiencing all that is happening all around us. Faster heart beats, quicker acquisitions, rapid succession of thoughts, quick turnover of relationships, higher

decibels of sound everywhere, and short attention span, etc., are all contributing to accelerating the pace of our thought and action. Is this being reflected in the pop music being produced today? Most of music we hear on the street and in movie theatres are fast-paced rhythms, high-pitch vocals, and programmed electronic sounds with a heavy dose of low frequency rhythm beats to stimulate the lower energy centres (chakras) of our psychosomatic physiology.

The music we hear and imbibe has something to do with how it is composed and recorded. The rhythm box for most compositions is programmed along with harmonic tones and side percussion. Then each of the many tracks are sequenced, leaving blank the vocal. So far only the composer is involved, with no trace of live musicians. Then the vocalists arrive, listens to the existing tracks, and records his voice. All the tracks are then mixed, and re-recorded. Hardly any real instrumentalists are

involved in the process, much less to interact among themselves. Many such compositions do assure a quick high but are soon forgotten. Perhaps that's what people want and are willing to pay for it - take it, use it, drop it - much like a commodity.

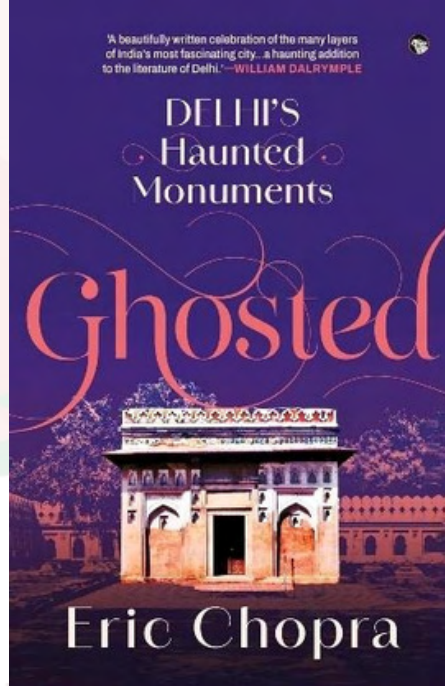
Compare this with all instrumentalists sitting together with the vocalist and the composer - their body language, eye gestures, smiles, exchange of breath, merger of energy vibrations, and intermingling of their emotions and musicality. Then something is produced which is alive and coherent and is a real act of creation. This is not to say that everything old is better than everything new, or that all commercial music is uncreative. But just imagine the kind of music you would listen to relax and heal yourself, to quieten your mind, or the kind of songs you start humming unconsciously when you wake up.



Book Review **Ghosted: Delhi's Haunted Monuments by Eric Chopra**

Mallika Ramachandran

Freelance Editor, Reviewer, Independent
Legal Researcher



Ghosts, jinn, ghouls, and various other worldly creatures of different descriptions have always been a source of fascination for all, with ghost stories shared on rainy, dark evenings; Ouija boards played with; and places said to be 'haunted' visited. With human presence traceable to as far back as 100,000 years, and city after city occupying its space, the remnants of all the previous ones ever

present in its history of invasion, destruction, division, and abandonment, Delhi is naturally home to several such stories, legends, and places.

In *Ghosted: Delhi's Haunted Monuments*, historian, writer, and speaker Eric Chopra takes us on an engrossing journey through five of these: Jamali-Kamali housing the tombs of sixteenth-century Sufi saint and poet, Shaikh Jamaluddin Kamboh and the mysterious Kamali, said to be the home of jinn; Ferozeshah Kotla, where too jinn reside but ones that are akin to saints, to whom prayers and petitions are regularly submitted to resolve problems, and improve lives; the Khooni Darwajah, some of the gruesome legends connected to which are

more myth than reality; the Mutiny Memorial, said to be haunted by the dark shadows of those who died in the 1857 mutiny on the Delhi Ridge, constructed for fallen British soldiers but rededicated to those who were killed in the fight against the colonials; and the famed Malcha Mahal, built by Ferozeshah Tuglak and later occupied by Begum Wilayat whose life ended tragically.

A journey to these places is not merely about the structures and their otherworldly residents, it is also about their histories and those who built them - Ferozeshah Kotla, once the fort and seat of Ferozeshah Tuglak (and in which even older periods are present in the form of an Ashokan pillar) is now more relevant as the abode of friendly jinn to whom offerings are made and petitions for help submitted. It has also been a space of importance in the nationalist struggle (the meeting place of Shaheed Bhagat Singh and Chandrashekar Azad) and the aftermath of the

partition (as a place of temporary refuge), and in its recent past also a space for art and theatre, involving both the jinn and the ghosts of its past. The author draws from a range of sources to put together his rich account, not only history texts but folklore and popular legend, religion and etymology, and his own personal experiences visiting and guiding walks, and observations of others who similarly interact with these spaces - as historians, and artists and visitors, petitioners to the jinn, and even security personnel.

The outcome is an easy-to-read, engaging account which feels almost like the reader is accompanying the author on a visit to each of these places, regaled with tales of their history but more interestingly those of their ghostly inhabitants. While we may not experience the typical feelings and sounds of the ghost story, the paraphernalia are there at least in some with creaking doors locked and chained. The book is abundant in detail, and

while not overwhelming at most points, perhaps the reader would enjoy it better reading slowly taking their time rather than rushing through.

Ghosted: Delhi's Haunted Monuments is published by Speaking Tiger, 2025



Cow's milk protein allergy (CMPA) or dairy allergy

Dr. Ramnik Mathur

Paediatrician at Chelsea & Westminster NHS Trust
ramnikmathur@gmail.com



Cow's milk protein allergy (CMPA) or dairy allergy has become extremely common these days. It was unheard of 10 years ago or probably not well recognised. Even now we see patients with cow's milk protein allergy who are missed for a long time. They are being treated as baby eczema, a bit of reflux, sometimes constipation, sniffly/congested all the time, but without improvement, as they fail to get the right treatment, which is mainly elimination of cow's milk from the diet.

We don't know why the incidence has gone up so much but there are

several theories, like Hygiene Hypothesis etc. or just an increase in the awareness of the condition. The human body recognises cow's milk as a foreign element leading to a full-body reaction in a baby manifesting between the ages of six to eight weeks i.e. around one to two months i.e. 4-6 weeks of age. The symptoms start as reflux which is getting worse over time and not improving despite feed thickeners like Gaviscon infant or Carobel.

The stools are sometimes runny or soft and over time the baby starts to strain a lot when opening his or her bowels. If it's left untreated, there may be blood/mucus in the stools. These babies do not poo regularly and sometimes may be diagnosed with

constipation but the poo is still runny. Slowly the skin starts to get dry or eczema keeps getting worse and cradle cap develops. The baby is often treated with multiple moisturisers and sometimes steroid creams, which help, but eczema returns as soon as the steroids are stopped.

If the allergy is mild the baby may be putting on weight but after some time the weight starts to get static, in severe cases. These babies are most often very uncomfortable especially after feeds as they might have acid reflux or silent reflux which may not be visible as vomiting after feeds.

There are two types of cow's milk protein allergy. The first one is called IgE mediated in which the presentation is slightly different. When the baby's first given formula or

cow's milk in some form, they react severely, with rash around the face, vomiting and sometimes difficulty in breathing. Luckily, this type is not very common.

Most of the cases are non-IgE mediated with a slow onset of symptoms as described above. These babies are often congested and their nose is always blocked. It doesn't seem to get better with saline drops. As they are non-IgE mediated there is unfortunately no test to diagnose this. The best diagnosis is by elimination of cow's milk from the diet and slow resolution of symptoms between two to four weeks.

It does take at least two weeks before the symptoms get better, because the cow's milk that is already in babies' and mothers' body, takes time to get eliminated from the body. Slowly the symptoms improve and within four weeks most of the baby's symptoms are much better. The clinical condition improves, including the skin, reflux and the loose stools then they start to put on weight

as per their potential.

Treatment is by eliminating of dairy from the mother's diet if they are breastfed. That includes the elimination of cow's milk, yoghurt, cheese and milk chocolate. The mothers can drink plant-based formulas like Oat, coconut, or almond. We do not recommend soya as below six months of age, 1/3 of the cases of cow's milk protein allergy can also be allergic to soy.

If they are formula-fed, the milk has to change to a hypoallergenic formula, which is also known as extensively hydrolysed formulae. The milk is broken down into smaller protein chains which do not cause a reaction in the baby's body and 90 to 95% of the cases improve with this formula.

Some babies who have severe cow's milk protein allergy may need to go on an amino acid formula, which is further broken-down protein chains into individual amino acids.

Examples of extensively hydrolysed formulas are Nutramigen, Similac Alimentum, SMA Althera

and Aptamil Pepti. The amino acid formulas are Neocate, Alfamino, Puamino and Elecare. They are prescription-only formulas, although they are becoming available on Amazon and other pharmaceutical websites but are very expensive.

The major problem with these formulas is that the taste is not great, as they are broken down chains. Younger babies less than 2 months are ok with it but if the child is older, their taste buds are well developed and it becomes a bit difficult for them to get used to the taste of these formulas.

I advise adding a little bit of vanilla extract (1-2 drops to a bottle of milk) to make it a bit more palatable. After one year of age, there is a tastier formula called Neocate junior, which comes in vanilla, strawberry or chocolate flavour and children tolerate it better. After the age of 1 year, they are also advised to try oat milk which is the most nutritionally complete plant-based milk as compared to cow's milk. Goat milk is not

साहित्य संवाद शृंखला के अंतर्गत आयोजित कार्यक्रम

हर दूसरे शनिवार रात 15:30 (ब्रिटेन) / 8 बजे (भारत) आयोजित।

recommended as it has the same proteins as cow's milk and will not lead to improvement in symptoms although it is slightly better tolerated by some babies.

These children should be monitored by a dietitian as they will have to be given a nutritionally adequate diet and the weaning has to be cow's milk protein-free. I usually advise them to be weaned at four months of age rather than six months as advised by WHO currently. There is evidence that the sooner they're introduced to allergenic food, the risk of them being allergic to that food (specially peanuts) goes down significantly by the age of five years. Weaning them early also helps with reflux and quicker weight gain. Most babies with a non-IgE mediated allergy will grow out between the ages of one to two years but IgE mediated allergy will take time to grow out of. We introduce milk into the babies with non-IgE mediated CMPA via a 'MILK LADDER', around 9 months of age, under dietician supervision.

कार्यक्रम से जुड़ने का लिंक:

<https://us02web.zoom.us/j/87612432009> Passcode: 898796

यूट्यूब पर लाइव प्रसारण: <https://bit.ly/2KOG02W>

साहित्य संवाद: मनीषा कुलश्रेष्ठ

संविदा 4 जुलाई 2026
15:30 (ब्रिटेन)
20:00 (भारत)

कार्यक्रम से जुड़ने का लिंक:
<https://us02web.zoom.us/j/87612432009>
Passcode: 898796

यूट्यूब पर लाइव प्रसारण:
<https://bit.ly/2KOG02W>

संविदा: मनीषा कुलश्रेष्ठ
संविदा: मनीषा कुलश्रेष्ठ
संविदा: मनीषा कुलश्रेष्ठ

साहित्य संवाद - मनीषा कुलश्रेष्ठ
4 जुलाई 2026

साहित्य संवाद: अलका सिन्हा

संविदा 18 जुलाई 2026
15:30 (ब्रिटेन)
20:00 (भारत)

कार्यक्रम से जुड़ने का लिंक:
<https://us02web.zoom.us/j/87612432009>
Passcode: 898796

यूट्यूब पर लाइव प्रसारण:
<https://bit.ly/2KOG02W>

संविदा: अलका सिन्हा
संविदा: अलका सिन्हा
संविदा: अलका सिन्हा

साहित्य संवाद - अलका सिन्हा
18 जुलाई 2026

साहित्य संवाद: महेश दर्पण

संविदा 1 अगस्त 2026
15:30 (ब्रिटेन)
20:00 (भारत)

कार्यक्रम से जुड़ने का लिंक:
<https://us02web.zoom.us/j/87612432009>
Passcode: 898796

यूट्यूब पर लाइव प्रसारण:
<https://bit.ly/2KOG02W>

संविदा: महेश दर्पण
संविदा: महेश दर्पण
संविदा: महेश दर्पण

साहित्य संवाद - महेश दर्पण
1 अगस्त 2026

साहित्य संवाद: गंगाराम राजी

संविदा 15 अगस्त 2026
15:30 (ब्रिटेन)
20:00 (भारत)

कार्यक्रम से जुड़ने का लिंक:
<https://us02web.zoom.us/j/87612432009>
Passcode: 898796

यूट्यूब पर लाइव प्रसारण:
<https://bit.ly/2KOG02W>

संविदा: गंगाराम राजी
संविदा: गंगाराम राजी
संविदा: गंगाराम राजी

साहित्य संवाद - गंगाराम राजी
15 अगस्त 2026

साहित्य संवाद: उर्मिला शिरीष

संविदा 29 अगस्त 2026
15:30 (ब्रिटेन)
20:00 (भारत)

कार्यक्रम से जुड़ने का लिंक:
<https://us02web.zoom.us/j/87612432009>
Passcode: 898796

यूट्यूब पर लाइव प्रसारण:
<https://bit.ly/2KOG02W>

संविदा: उर्मिला शिरीष
संविदा: उर्मिला शिरीष
संविदा: उर्मिला शिरीष

साहित्य संवाद - उर्मिला शिरीष
29 अगस्त 2026

साहित्य संवाद: विवेक मिश्रा

संविदा 12 सितंबर 2026
15:30 (ब्रिटेन)
20:00 (भारत)

कार्यक्रम से जुड़ने का लिंक:
<https://us02web.zoom.us/j/87612432009>
Passcode: 898796

यूट्यूब पर लाइव प्रसारण:
<https://bit.ly/2KOG02W>

संविदा: विवेक मिश्रा
संविदा: विवेक मिश्रा
संविदा: विवेक मिश्रा

साहित्य संवाद विवेक मिश्रा
12 सितंबर 2026